शौक़त थानवी की प्रस्तुत पुस्तक उनके रेडियो नाटकों का प्रतिनिधि संकलन है। इसमें से कुछ नाटक हास्यरस से ओत-प्रोत हैं तो कुछ में तीखे व्यंग्य बाणों के प्रहार पाठक के मन पर करारी चोट करते हैं। भाषा जैसी सुलझी हुई है, वैसी ही दिल को गुदगुदाने वाली भी है। हमें आशा है कि प्रस्तुत संकलन हमारे पाठकों को हास्यरस से सराबोर कर सकेगा।

—**प्रकाशक**

नहीं मगर हाँ

[टाइप करने की आवाज़। कुछ देर के बाद दरवाज़ा खुलता है और रेहाना प्रवेश करती है।]

रेहाना—ख़ैर, शुक्र है कि आज बरसों के बाद मशीन खोली तो गई मैं तो समझती थी कि बस अब शाइरी ही शाइरी रह जायेगी।

शाहिद—मैं दरख्वास्त लिख रहा हूँ नौकरी के लिए। तुम लोग अगर यह चाहते हो हिरन पर घास लादी जाये तो यह भी सही।

रेहाना—नहीं हिरन घास न लादे बल्कि तुम्हारा बस चले तो बस हवा फांको और शेर कहा करो। जब देखो शाइरी, जब देखो शाइरी न किसी काम के रहे न किसी काज के।

शाहिद—ख़ैर मैं तो निकम्मा हूँ ही मगर तुम और वह बुज़ुर्गवार तुम्हारे वालिद साहब क़िब्ला हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गये हैं। चार दिन से नौकरी क्या छूटी है कि दुनिया का सबसे ज़्यादा बेवक़ूफ़ आदमी मैं हूँ। सबसे ज्यादा निकम्मा, आलसी हद यह है कि जाहिल आदमी मैं हूँ। तमाम दुनिया मेरा कलाम सुन-सुनकर सर धुनती है और आपके वालिद साहब हैं कि कहीं मेरा शेर सुन लिया और नाक-भौं की कमानी खराब हुई।

रेहाना—कौन ? अब्बा मियां ? मालूम नहीं वह क्यों ये बातें सुनने के लिए तुम्हारे बीच में बोलते हैं। जब मालूम हो गया कि एक आदमी को हमारी बात की बर्दाश्त नहीं है तो भई चुप ही रहो। मगर अब्बा मियाँ को तो किसी बात का अन्दाजा ही नहीं होता।

शाहिद—फिर वही ! रेहाना तुम सचमुच अपने बाप की बेटी हो। न कुछ समझो न बूझो बस बुरा मानने को तैयार रहती हो और यह नहीं देखतीं कि इन हज़रत ने गोया क़सम खाली है कि मेरी किसी बात की ताईद नहीं करेंगे। मैं अगर दिन को दिन कहूँगा तो भी वह सिर्फ मुझको जलील करने के लिए दिन को दिन कहने से इन्कार कर देंगे।

[बड़े मियां खाँसते हुए आते हैं।]

मिर्जा साहब—अरे भई रेहाना ! मैंने कहा बेटी रेहाना।

रेहाना—आ रही हूँ अब्बा मियाँ। [आती है।]

मिर्जा साहब—कहां तशरीफ़ ले गये हमारे शाइरे-आज़म, क्या नाम मियाँ शाहिद यानी हज़रत शाहिद काठगोदावरी ? [हँसते हैं।]

शाहिद—[आते हैं]—मैं हाज़िर हूँ अब्बा मियाँ, ज़रा काम कर रहा था कुछ।

मिर्जा साहब--काम ? काम तो ख़ैर नहीं मगर हां कुछ ग़ज़ल-वज़ल कह रहे होगे। तुमको दुनिया का और क्या काम हो सकता है। भई क्या फ़र्माइशी गर्मी है।

शाहिद—जी हाँ, सख्त गर्मी है।

मिर्जा साहब—गर्मी ? गर्मी तो ख़ैर नहीं मगर हाँ पसीना बहुत निकल रहा है। तो भई क्या काम कर रहे थे ?

शाहिद—एक जगह कलक्टरी में खाली हुई है उसके लिए अर्ज़ी लिख रहा था।

मिर्जा साहब—अर्जी तो खैर नहीं, मगर हां दरख्वास्त लिख रहे होंगे।

शाहिद—अर्जी और दरख्वास्त में तो मेरे नजदीक कोई फ़र्क़ नहीं। यों आप तरदीद (खण्डन) करना चाहे तो दूसरी बात है।

मिर्जा साहब—मियां तरदीद की बात नहीं है। मगर हां इसको लफ्ज़ी इख्तिलाफ़ (शाब्दिक मतभेद) कह सकते हैं। मेरे नजदीक अर्जी और दरख्वास्त में फ़र्क़ तो नहीं, मगर हां यह फ़र्क़ है कि अर्जी बीमारी की छुट्टी वग़ैर के लिए दी जाती है और दरख्वास्त इस क़िस्म के मौक़ों पर दी जाती है। मियां यह शाइरी नहीं है, यह समझदारी के मामलात हैं।

रेहाना—अच्छा तो अब्बा मियां आइये अब नाश्ता कर लीजिए। इनको दरख्वास्त लिखने दीजिए।

मिर्जा साहब—हां तुमने ठीक कहा इस मौके पर दरख्वास्त ही भेजनी चाहिए। तो चलो।

[दोनो जाते हैं।]

शाहिद—रेहाना, तुम ज़रा मेरी बात सुनती जाओ।

[रेहाना वापस लौटती है।]

रेहाना—कहो।

शाहिद—देखलीं तुमने इनकी बातें? आदमी का जी सर पीट लेने को न चाहे तो और क्या चाहे? अर्जी नहीं मगर दरख्वास्त, गर्मी नहीं मगर पसीना। मैं सच कहता हूँ कि यह मेरा दिमाग़ खराब कर देंगे। यह किसी दिन मैं······मैं ····· मैं···

रेहाना—हां, हां, कहो न। किसी दिन तुम क्या करोगे? घर से निकाल दोगे इनको? बुरा-भला कहोगे इनको या आखिर क्या इरादा है तुम्हारा?

शाहिद—बस बुरा मान जाओ। और मैं जो खून के घूंट पी-पी कर

रह रहा हूँ वह गोया कोई बात नहीं।

रेहाना—तो आखिर उन्होंने कौन-सी ऐसी बात कह दी कि ·····

[दरवाजे पर दस्तक]

तिरियाक़—शाहिद साहब तशरीफ़ रखते हैं ?

शाहिद—[आवाज देकर] हाजिर हुआ। [बीवी से] शायद तिरियाक़ साहब हैं, जरा पानदान भेज देना।

[जाता है।]

तिरियाक़—आदाब बजा लाता हूँ हजरत। माफ़ कीजियेगा जहमत दी।

शाहिद—तशरीफ़ लाए आप और जहमत हुई मुझको ? क्या खूब !

खुद ही क़त्ल भी करे है खुद ही ले सवाब उल्टा।

तिरियाक़—भई वाह परसों के मुशाइरे में क्या खूब ग़ज़ल पढ़ी है। अजीब रंग है और क्या आमद है ! ग़जल की ग़जल मुरस्सा (शानदार) थी, हर शेर बार-बार पढ़वाया मगर मेरी (तृप्ति) न हुई। क्या था वह मतला ?

अब अपना फ़साना भी मुझे याद नहीं है।

शाहिद—खैर वह मतला ही क्या था, ख्वाहमख्वाह आप लोग ले उड़े। मैंने तो यों ही सीधी सी बात कह दी थी।

तिरियाक़—यक़ीन जानिये वही ग़ज़ल घसीट कर लाई है इस वक़्त। जहमत तो होगी मगर भई एक मरतबा तो और सुना दो हैं हैं ! क्या ग़जल कह दी है जालिम ने, हर शेर ढला हुआ ! हाँ इरशाद।

शाहिद—आप ही की समा खराशी है,[1] अर्ज करता हूँ।

[शाइराना तरन्नुम के साथ शेर पढ़ता है]

फ़रियाद कि कुछ मक्सदे-फ़रियाद नहीं है।
अब अपना फ़साना भी मुझे याद नहीं है॥

---

१ किसी ग़ज़ल के लिए दिया गया मिसरा।

तिरियाक़—किस रुख से मिसरा लगाया है :

फ़रियाद कि कुछ मक़सदे फ़रियाद नहीं है।

अहह !

शाहिद—आदाब बजा लाता हूँ। यह आपका हुस्ने-समाअत है और क्या अर्ज़ कर सकता हूँ।

तिरियाक़—अरे भई फिर पढ़ो। ओ हो हो—कि कुछ मक़सदे-फ़रियाद नहीं है। अहह !

[एहसान मिर्ज़ा खाँसते हुए आते हैं।]

तिरियाक़—आदाब अर्ज़ करता हूँ।

मिर्ज़ा साहब—आदाब अर्ज़ यानी जीते रहो। कहो भई खैरियत तो है। यह क्या कुछ शाइरी-वाइरी हो रही है ?

तिरियाक़—जी हाँ परसों के मुशाइरे में शाहिद साहब की ग़ज़ल सुनी थी। उसी को फिर सुनने को जी चाहा तो चला आया।

मिर्ज़ा साहब—वही तो मैंने कहा कि कुछ शाइरी-वाइरी हो रही है। क्या थी तरह वहाँ की ?

तिरियाक़—तरह थी :

ना वाक़िफ़े-ग़म अब दिले-नाशाद नहीं है

मिर्ज़ा साहब—भई मैं जरा ऊँचा सुनता हूँ। नावाक़िफ़े-ग़म क्या चीज नहीं है ?

शाहिद—[होठों ही में] इन्हें जाने भी दीजिए।

तिरियाक़—नावाक़िफ़े-ग़म अब दिले-नाशाद नहीं है।

मिर्ज़ा साहब—दिले-नाशाद नहीं है। खूब खूब ! तो क्या हुई उस पर आपकी ग़ज़ल ?

तिरियाक़—मेरी ग़ज़ल नहीं, शाहिद साहब की ग़ज़ल हासिले-तरह[1] थी। वही सुन रहा था।

शाहिद—[होठों ही में] लाहौल वला क़ूवत।

---

१. दी हुई तरह पर कही गई सर्व श्रेष्ठ ग़ज़ल।

मिर्जा साहब—खैर-खैर। हासिले-तरह तो नहीं मगर हाँ यह हो सकता है कि खुशगो-शोअरा न आये हों और हासिले-मुशाइरा रह गई हो, तो क्या थी वह ग़ज़ल ?

तिरियाक़—हाँ शाहिद साहिब इरशाद फ़रमाइये।

शाहिद—[कुछ बेदिली के साथ] फ़रियाद कि कुछ मक्सदे-फ़रियाद नहीं है। अब अपना·········

मिर्जा साहब—तौबा है भई आदमियों की तरह सुनाओ, तुम तो घास काटने लगे। तरन्नुम में मानी-आफ़रीनी (सार्थकता) को छुपाने की कोशिश न करो। जरा समझने तो दो।

फ़रियाद कि कुछ मक्सदे-फ़रियाद नहीं है

यह आखिर क्या बात हुई ? अच्छा खैर। दूसरा मिसरा इस पर क्या लगाया ?

तिरियाक़—अब अपना फ़साना भी मुझे याद नहीं है।

मिर्जा साहब—यानी यह उस ग़ज़ल का मतला है जो हासिले-मुशाइरा समझी गई ? इसमें कोई खास बात तो नहीं, मगर हाँ अन्दाजे बयान कुछ गंजलक जरूर है। दूसरा शेर क्या हुआ ?

तिरियाक़—इरशाद शाहिद साहब।

शाहिद—अब फिर किसी वक्त सुन लीजिएगा। कुछ शेर का माहौल नहीं है और तबियत भी बेकैफ़-सी है।

मिर्जा साहब—मियाँ तबियत तो बेकैफ़ नहीं, मगर हाँ तनक़ीद से लोग घबरा ज़रूर जाते हैं। हालांकि तनक़ीद ही शेर की माँ है जिसके बग़ैर शेर बे माँ का बच्चा है, क्या समझे ? तो दूसरा शेर क्या हुआ ?

तिरियाक़—बिस्मिल्लाह पढ़िये ना··· जी

शाहिद—अर्ज़ किया है ?

तखरीब ही बुनियाद है तखरीब ही तामीर।

मिर्जा साहब—ठहरो ज़रा। तखरीब ही बुनियाद है, तखरीब ही

तामीर, अच्छा साहब ।

शाहिद—**तख़रीब ही बुनियाद है तख़रीब ही तामीर ।**
तामीर 'प' क़ायम मिरी बुनियाद नहीं है ।।

तिरियाक़—सुब्हान अल्लाह ! क्या कहना है !

मिर्ज़ा साहब—[बात काट कर] मियाँ ठहरो तो, सुब्हान अल्लाह कैसे हो सकता है ? मेरे ख़याल में शेर ही ग़लत है और ग़लत शेर पर सुब्हान अल्लाह वग़ैरा कहना ग़लती की ताईद यानी खुद एक क़िस्म की तख़रीब है । वाक़ियात तो मियाँ शाहिद ने इस शेर में ठीक कहे हैं यानी खुद उनकी यह नक़्शाकशी अपनी ज़िन्दगी के मुताल्लिक़ है । हाँ तो शेर क्या है शेर ?

शाहिद—मैं दूसरा शेर पढ़ता हूँ । इस पर फिर ग़ौर करूँगा ।

तिरियाक़—बिस्मिल्लाह ।

मिर्ज़ा साहब—मियाँ बिस्मिल्लाह नहीं मगर हां तो तुम दूसरा शेर क्यों पढ़ोगे पहले इसी शेर पर बहस कर लो ना । बात यह है कि ग़लती को सराहना दुश्मनी समझता हूँ । तो मेरा मतलब यह है कि क्या है वह शेर ?
तामीर में तामीर है……तख़रीब क्या है वह शेर आखिर ? पढ़ो ना ।

शाहिद—[आहिस्ता] लाहौल वला क़ूवत ! [ज़ोर से] जी वह यह है : **तख़रीब ही बुनियाद है तख़रीब ही तामीर**
तामीर प' क़ायम मिरी … …

मिर्ज़ा साहब—[बात काट कर] मियाँ ठहरो । एक-एक मिसरे पर बहस करो । तख़रीब ही बुनियाद है तख़रीब ही तामीर । यह मिसरा बहुत-बहुत उम्दा तो नहीं मगर हाँ अच्छा है । अलबत्ता बहुत खूबसूरत चोरी है । क्या समझे ? चोरी 'यानी सर्क़ा यह खुला हुआ सर्क़ा है । मिर्ज़ा कहते हैं : मिरी तामीर में मुज़मिर हैं इक सूरत ख़राबी की' और तुम

कहते हो—'तख़रीब ही बुनियाद है तखरीब ही तामीर।' लग्व (बकवास) अफ़सोसनाक सक़ी है। और दूसरा मिसरा ? क्या है वह ?

तिरियाक—तामीर प' क़ायम मिरी बुनियाद नहीं है।

मिर्ज़ा सहब—बुनियाद नहीं है। यानी इस मिसरे ने शेर को बुलन्द नहीं, मगर हाँ मोहमल (निरर्थक) बेमानी और हिमाक़त की तसवीर बनाकर रख दिया है। मियाँ साहबज़ादे, भई शायरी की थी तो वही ढंग की की होती। यह तो आपको मालूम नहीं कि बुनियाद पर तामीर क़ायम होती है या तामीर पर बुनियाद। तमाम दुनिया तामीर पर इमारत क़ायम करती है और हमारे इस अक़्ले-कुल दामाद साहब ने तामीर यानी इमारत के ऊपर बुनियाद क़ायम की है।

[हँसते हैं]

तिरियाक़—मगर मेरे खयाल में···

मिर्ज़ा साहब—[बात काट कर] भई तुम्हारे खयाल में क्या—यानी तुम कैसी ही तरफ़दारी करो मगर इमारत के ऊपर बुनियाद तौबा तौबा ! अच्छा खैर और शेर वग़ैरा क्या है आगे ?

शाहिद—आपको मालूम है कि मैंने उस्तादी का दावा नहीं किया। अपने शौक़ के लिए शेर कहता हूँ और किसी से इस्लाह (संशोधन) तक नहीं लेता।

मिर्ज़ा साहब—भई इसमें बुरा मानने की कौन सी बात है ? इस्लाह न लेना कोई कमाल नहीं, मगर हाँ शेखी ज़रूर है और बग़ैर इस्लाह के इतना भी कह लेते हैं बहुत हो तुम्हारा इल्म मैं जानता हूँ और वैसे भी कुछ ज्यादा ज़हीन नहीं मगर हाँ सूझ-बूझ अच्छी बशर्ते कि ग़लतफ़हमी अपने मुताल्लिक़ पैदा न हो जाये। मुझे खुशी है कि तुमने अपनी ग़लती को तसलीम कर लिया। यह सआदतमन्दी तो नहीं, मगर

हाँ फ़र्माबरदारी जरूर है । तो दूसरा शेर ?

शाहिद—अब मैं किसी को दिखाने के बाद बाक़ी ग़ज़ल सुनाऊँगा ।

तिरियाक़—उँह फ़र्माइये भी । इस वक़्त तो कलाम और तनक़ीद दोनों का लुत्फ़ आ रहा है ।

शाहिद—तो गोया आपके लुत्फ़ के लिए क़ुरबानी का बकरा मैं बनूँ ?

मिर्ज़ा साहब—क़ुरबानी का बकरा तो नहीं, मगर हाँ भेंट चढ़ूं तुम कह सकते हो ।

शाहिद—जी हाँ, इन दोनों में गोया बहुत बड़ा फ़र्क़ है ।

मिर्ज़ा साहब—फ़र्क़ तो नहीं मगर हाँ सूरत जुदा है तो ख़ैर वह, मैंने कहा क्या है दूसरा शेर ?

तिरियाक़—इरशाद ।

शाहिद—[बे दिली के साथ पढ़ता है ।]

गहे† रुख प' तबस्सुम है गहे चीं बजबीं‡ है ।

मिर्ज़ा साहब—एक गह और दूसरा गहे । ख़ैर तो क्या है मिसरा गह रुख प' जबीं ?

तिरियाक—गह रुख प' तबस्सुम है गहे चीं बजबीं है ।

मिर्ज़ा साहब—अच्छा फिर ?

शाहिद—गह रुख प' तबस्सुम है गहे चीं बजबी है ।

इक बात प' क़ायम सितम ईजाद नहीं है ॥

तिरियाक़—[ज़ोर शोर से] अहा हा ! सुब्हान अल्लाह ! क्या कहना है !

शाहिद— [ज़रा कड़वाहट से] जी हाँ । इसको शेर कहते हैं । अर्ज़ किया है ...

मिर्ज़ा साहब—क्या अर्ज़ किया है ? ठहरो ज़रा भई यह शेर कई ग़लतियों का शिकार मालूम होता है । मेरे ख़याल में ग़लत शेर कहने से ज्यादा बेहतर यह है कि पहले तुम शेर समझने

---

† कभी, ‡ क्रुद्ध ।

की अपने में क़ूवत खैर क़ूवत तो नहीं, मगर हाँ सलाहियत (गुण) पैदा करो। मेरे खयाल में तुम शेर का ही मतलब खैर मतलब तो नहीं, मगर हाँ मफ़हूम (अर्थ) नहीं बता सकते तुम्हारे नज़दीक इस शेर के क्या मानी हैं ?

नहर पर चल रही है पनचक्की

ग़ौर से सुनो। तुम्हारी क़ाबिलियत से बाहर का कोई शेर नहीं है, मगर मतलब ज़रा गहरा। खैर गहरा तो नहीं, मगर अमीक़ (गहरा) ज़रूर है।

नहर पर चल रही है पनचक्की।
धुन की पूरी है काम की पक्की॥

तिरियाक़—[हंसता है] क्या शेर फ़र्माया है।

शाहिद—मेरी क़ाबिलियत की हद बताई गई है। इस शेर का मतलब सिर्फ़ यही है।

मिर्ज़ा साहब—मियाँ यह तुम्हारी बहुत बुरी आदत है कि जब से तुम बेरोज़गार तो नहीं, मगर हाँ बेकार हुए हो बात-बात पर बुरा मान जाते हो। इस शेर को समझो। ग़ौर करो और फिर मानी बताओ। 'नहर पर चल रही है पनचक्की'। नहर और पनचक्की का रब्त नहर का पानी और पनचक्की का पन यानी पानी का मुखफ़्फ़फ़ (संक्षिप्त) क्या रियाअत रखी है। अब ग़ौर करो इस पर क्या कहा है ज़ालिम ने अ हा हा !

तिरियाक़—आप मानी-आफ़रीनी में भी कमाल रखते हैं।

मिर्ज़ा साहब—मैं ग़ौर करता हूं, कुछ पढ़ा-लिखा भी है मैंने। और सर में घास नहीं दिमाग़ है और यह बेचारे खैर कोदन (अल्प-बुद्धि) तो नहीं मगर हाँ सख्त कुन्द ज़हन (दुर्बुद्धि) हैं। कभी जो इस शेर का मतलब समझ पायें। अच्छा भई जहन्नुम में डालो इस शेर को, तुम क्या बताओगे इसके मानी ?

शाहिद—जी हां यह शेर भी मेरी क़ाब्लियत से बाहर है।

तिरियाक़—[आहिस्ता से] चुप भी रहो [ज़ोर से] तो अब ग़ज़ल आगे पढ़वाई जाये।

मिर्जा साहब—धुन की पूरी है काम की पक्की'। अब देखिये पूरी और पक्की में भी रब्त (सम्बन्ध) है। पूरी पकाई जाती है न?

शाहिद—अच्छा तो यह पूरी है कचौरी वाली?

मिर्जा साहब—है तो नहीं, मगर हां हो सकती है। यानी शेर का एक पहलू यह भी है। तो खैर क्या था वह शेर तुम्हारा? उसमें अक्सर क़ाबिले-एतराज़ बातें हैं। मसलन, मसलन क्या है वह शेर?

शाहिद—अब ग़ज़ल मुलतवी की जाये ना, कुछ तिरियाक़ साहब का कलाम सुनिये।

मिर्जा साहब—तिरियाक़ साहब का कलाम यक़ीनन गलतियों से पाक होगा। वह सिर्फ़ शाइर नहीं बल्कि मुलाज़िम पेशा भी हैं। तुम अपनी गलतियों से कुछ परेशान से हो और मैं चाहता हूं कि मेरा दामाद अगर शाइरी करे यानी कुछ न करते हुए शाइरी करे तो कम से कम वही ग़लत न करे। हां तो वह शेर क्या है?

तिरियाक़—वह शेर है:

> **गह रुख प' तबस्सुम है गहे चीं बजबीं है।**
> **इक बात प' क़ायम सितम ईजाद नहीं है॥**

मिर्जा साहब—साहबज़ादे, इस शेर में सबसे बड़ा नुक़्स यह है कि यह मतला है कि जबीं है का क़ाफ़िया (तुक) नहीं है। समझकर कौन गधा इसको शेर कह सकता है?

तिरियाक़—यह बात तो आपने खूब पैदा की, वाक़ई मतला हो गया है एक दूसरी तरह का।

मिर्जा साहब—मियां, शाइरी कभी मैंने नहीं की, मगर इन मोटी

बातों को समझता हूँ और इन शाइर साहब से तो बहरहाल बेहतर हूँ। यह शाइर तो खैर हैं नहीं मगर हाँ तुकबन्दी तक ढंग से करना नहीं जानते कि शाइर होने का धोका हो सके। अब तुम ही बताओ कि मतला कह देना और उसको शेर समझना शाइरी है या अफ़सोसनाक जहालत।

तिरियाक़—मगर इससे शेर की खूबी पर तो कोई असर नहीं पड़ता।

मिर्जा साहब—शेर की खूबी? शेर की खूबी का हाल भी सुन लो कि दूसरे मिसरे में कहना यह चाहते हैं कि एक बात पर भी क़ायम सितम ईजाद नहीं है और कहा है :

इक बात पर क़ायम सितमईजाद नहीं है।

गोया लफ़्ज़ भी जो इस शेर की कुंजी है, यह हज़रत खागये हैं। दिमाग़ ठिकाने नहीं और शेर कहने चले हैं।

शाहिद—तो आपका मक़सद आखिर क्या है।

मिर्जा साहब—मक़सद? मक़सद तो नहीं, मगर हाँ मतलब यह है कि यहाँ कोई ढंग का काम करो। यह शेर-ओ-अदब तुम्हारे बस का रोग नहीं है। बड़े अदीब बनते थे मगर एक मामूली अखबार की एडीटरी तक से बरतरफ़ खैर बरतरफ़ तो नहीं, मगर हाँ बरख्वास्त कर दिये गये। हालाँकि वह अखबार दो पैसे का बिकता है।

तिरियाक़—मगर मैंने तो सुना है कि शाहिद साहब हिन्दुस्तान के सबसे बड़े अखबार की एडिटरी पर जा रहे हैं जो बड़ों के लिए बाइसे-रश्क (ईर्ष्या का कारण) होगा।

मिर्जा साहब—कौनसा अखबार? कोई दो पैसे वाला होगा जिसमें बरतरफ़ी के वक़्त दो महीने की तनख्वाह मारली जाये और मेरी बेटी, खैर बेटी तो नहीं, मगर हाँ लड़की को सख्त तकलीफ़ हो खर्च वग़ैरा की।

तिरियाक़—आपने रोजनामा 'खंजर' का नाम तो सुना होगा?

मिर्जा साहब—'खंजर' ? उसकी एडीटरी यानी इबारत यह करेंगे मियां शाहिद ? [हँसता है] अच्छा मजाक़ किया तुमने भी। भई उसके एडिटर की इब्तिदाई तनख्वाह तीन सौ रुपये माह-वार होती है।

तिरियाक़—जी हां, मैंने वसूक़ (विश्वास) से सुना है कि शाहिद साहब को 'खंजर' में बुलाने की कोशिश हो रही है बल्कि वहां तो सिर्फ़ यह खयाल है कि शायद इस तनख्वाह को शाहिद साहब क़ूबूल न करें।

मिर्जा साहब—[ज़ोर से हँसता है] भई ये तीन सौ रुपये क़ूबूल न करने की भी एक ही रही। शाइर के परवाज़े-तखय्युल (कल्पना की उड़ान) का यह भी एक नमूना है। गोया आपने यह शेर कहा है। [हँसते हैं।]

शाहिद—मेरे पास उनका खत आया था, मगर मैं खुद इसको ग़लत समझता हूँ। इसलिए कि वहां आखिर मेरा क्या असर ?

[दरवाज़े पर दस्तक होती है।]

मिर्जा साहब—कौन भई ? आ जाओ यानी तशरीफ़ लाइये।

[क़दमों की चाप]

शाहिद—तार है, इधर लाओ।

मिर्जा साहब—देखना भई किसका तार है ? तिरियाक़ साहब को दो वह पढ़ेंगे। अंग्रेजी में होगा तार।

शाहिद—[लिफाफा खोलकर] 'खंजर' दिल्ली।

तिरियाक़—खंजर का तार क्या है ? भई बिसमिल्लाह करके पढ़ो।

शाहिद—आपकी शर्तें मंजूर, फ़ौरन रवाना होकर चार्ज ले लीजिए।

मिर्जा साहब—तिरियाक़ साहब, जरा आप पढ़िए।

तिरियाक—भई खुदा मुबारक करे। मैं तो यही जानता था कि तिरियाक़ की दुआएं खाली नहीं जा सकतीं।

मिर्जा साहब—मेरी खुशी बयान की मोहताज नहीं। मैंने हमेशा यही

समझा, समझा तो नहीं, मगर हाँ जाना कि शाहिद की क़ाब्लियत एतराफ़ (स्वीकृति) कराये बग़ैर नहीं रह सकती।

शाहिद—क़ाब्लियत तो नहीं, मगर हाँ.........।

मिर्ज़ा साहब—'नहीं मगर हाँ' की गुंजाइश तो क्या है? अरे भई ज़ाहिर है कि रोज़नामा 'खंजर' का एडिटर कोई ऐसा-वैसा तो नहीं हो सकता। यह तुम्हारी लियाक़त का यानी रोशन सुबूत है और मुझे फ़ख्र है। खैर फ़ख्र तो नहीं मगर हाँ नाज़ है कि 'खंजर' का मुदीरे-आला (प्रधान संपादक) मेरा दामाद यानी लख्ते-जिगर है।

तिरियाक़—लो भई अब जाकर भाभी जान को मुबारकबाद दो ताकि मिठाई में देर न हो।

मिर्ज़ा साहब—यह मुज़्दा (शुभ समाचार) खैर मुज़्दा तो नहीं, मगर हाँ खुश खबरी मैं सुनाऊंगा जाकर।

[जाते हैं।]

शाहिद—देखी बड़े मियां की इब्नुल वक़्ती।

तिरियाक़—इब्नुलवक़्ती तो नहीं मगर हाँ मौक़ापरस्ती।

[दोनों क़हक़हा बुलन्द करते हैं।]

बर्लिन का हस्पताल

[शीशियां रखने, दवायें उंडेलने और मरीज़ों के कराहने की आवाज़ें। डाक्टर साहब नर्स को आवाज़ दें।]

डाक्टर—नर्स ! नर्स ! [घण्टी बजाता है] ब्वाय-ब्वाय।

ब्वाय—हुज़ूर।

डाक्टर—देखो नर्स मिस साहब को सलाम बोलो।

[नर्स खुद ही खटखट करती हुई आती है।]

नर्स—गुड ईवनिंग डाक्टर।

डाक्टर—गुड ईवनिंग मिस। नम्बर दस का क्या हाल है ?

नर्स—वह उसको इंजेक्शन से कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वह अब तक यही बकता है कि नाज़ी खूंख्वार हैं।

डाक्टर—एक इंजेक्शन और दिया जायेगा। और नम्बर आठ अब ठीक है ?

नर्स—उसको तीन डोज़ दिये गये मगर उसका दिमाग़ गड़बड़ है। वह बोलता है कि जर्मन वहशियों को मात कर रहे हैं।

डाक्टर—और वह जिस मरीज़ का कल आपरेशन हुआ था।

नर्स—वह आज सुबह मर गया और मरते-मरते यही कहता रहा कि पागलों की तरह लड़ने से इस तरह मर जाना अच्छा है।

डाक्टर—उसका मरना ही अच्छा हुआ। उसने एक जल्से में तक़रीर की थी अगर नाज़ी सिपाही इस जंग से बाज़ न आये तो जर्मनी यूरोप के नक़्शे से उड़ जायेगा ? वह पागल था, बिल्कुल पागल। अच्छा ब्वाय मरीज़ों को बुलाओ और नर्स देखो हम मरीज़ों के देखने के बाद राउण्ड करेगा।

नर्स—बहुत अच्छा।

[जाती है।]

ब्वाय—हुज़ूर, पुलिस एक मरीज़ को लाई है और चार-पाँच मरीज़ जेल की लारी पर आये हैं।

डाक्टर—सबको एक-एक करके बुलाओ। पहले वह पुलिस वाला मरीज़।

ब्वाय—इधर आओ यहाँ खड़े हो ओ।

[ज़ंजीरों की आवाज़ कदमों की चाप]

डाक्टर—तुम्हारा नाम ?

मरीज़—जान।

डाक्टर—बाप का नाम ?

मरीज़—जैक।

डाक्टर—उम्र ?

मरीज़—पच्चीस साल।

डाक्टर—तुम क्या बीमार हो ?

मरीज़—मैं बिल्कुल तन्दुरुस्त हूँ, मुझे कोई शिकायत नहीं। मेरी सेहत बिल्कुल अच्छी है।

डाक्टर—फिर तुमको पुलिस ने मरीज़ क्योंकर समझा ?

मरीज़—मर्ज़ समझना अगर पुलिस का काम है तो चालान करना डाक्टरों का काम होना चाहिए।

डाक्टर—ओहो, हम यह नहीं पूछते। हमारे सवाल का जवाब दो कि तुमको क्योंकर मरीज़ समझा गया ?

मरीज—यह समझने वालों से पूछा जाये जिनका ख्याल है कि मेरा दिल कमज़ोर है और दिमाग़ भी खराब है। हालांकि मैंने सिर्फ फौज में भर्ती होने से इन्कार किया था कि मेरे नज़दीक नाज़ी हक़ पर नहीं लड़ रहे हैं बल्कि वे सिर्फ़ अमन को खत्म करना चाहते हैं।

डाक्टर—तुम्हारा यह ख्याल कब से है? यानी कब से ऐसी बातें सोचने लगे हो?

मरीज—जब से नाज़ी पार्टी ने ज़बरदस्ती शुरू की है।

डाक्टर—हूं। तुम्हारे यहां किसी और को भी यह मर्ज़ हुआ है?

मरीज—मर्ज़? मर्ज़ कैसा? यह मर्ज़ है कि मैं इन्साफ़ की बात कह रहा हूँ?

डाक्टर—यही मतलब है कि तुमको यह इन्साफ़ कब से हो गया?

मरीज—मुझे हमेशा अपनी ज़ात पर इन्साफ़ पसंद और हक़ गो (सत्यवादी) होने का फ़ख्र रहा है।

डाक्टर–आई सी (I see) तुम इन्साफ़ के अलावा हक़गोई में भी मुब्तिला हो। अच्छा तुम हस्पताल में रह कर इलाज करो। तुमको आराम हो सकता है मगर सख्त परहेज करो। तुम्हारा इन्साफ़ भी ठीक हो जायेगा और हक़ भी जाता रहेगा। ब्वाय, इसको ले जाओ और उस मरीज़ को लाओ।

ब्वाय—[ज़ोर से] जेल वाले मरीज को लाओ।

[ज़ंजीरों की आवाज़ें और कदमों की चाप]

डाक्टर—इसको क्या हुआ है?

ब्वाय—हुज़ूर इसकी आंखें खराब हैं।

दूसरा मरीज—मेरी आंखें बिल्कुल ठीक हैं। मैं सब कुछ देख सकता हूँ, मैं देख रहा हूँ कि यह हस्पताल है, यह घड़ी लगी हुई है, इसमें आठ बज कर तीन मिनट हुए हैं। यह डाक्टर हैं, इन का चश्मा यह है।

डाक्टर—फिर तुम्हारी आँख में और क्या खराबी है ?

दूसरा मरीज़—कोई खराबी नहीं, मेरी आँखों में अच्छी-खासी रोशनी है। मुझे कभी चश्मे तक की जरूरत नहीं हुई। मैं फ़ासले तक की चीजें भी देख सकता हूँ और नजदीक की भी। महीन-से-महीन छापे की इबारत पढ़ सकता हूँ।

डाक्टर—यह तो सब ठीक है, मगर फिर क्या बात है ?

ब्वाय—हुजूर रिपोर्ट यह है कि इसने दुश्मनों के फ़ौजी अफ़सर की तसवीर देखकर कहा था कि यह सूरत से शरीफ़ और राहे-रास्त (सन्मार्ग) पर मालूम होता है। और हमारे कमाण्डर की तसवीर देखकर यह कहा कि ज़ुल्म सूरत पर बरसता है।

डाक्टर—ओहो ! यह तो बहुत बड़ी आँखों की बीमारी है। आँखों की पुतलियों ने ग़लत चीजें देखना शुरू कर दी हैं और यह अंधे हो जाने की अलामत है। तुम्हारी आँखें कभी दुखने आई थीं ?

दूसरा मरीज़—बचपन के अलावा कभी नहीं।

डाक्टर—किसी ग़ैर मुल्की कोयले की कान का कोयला रेल वग़ैरा में तुम्हारी आँख के अन्दर कभी पड़ा ?

दूसरा मरीज़—कभी नहीं, और अगर पड़ा हो तो याद नहीं।

डाक्टर—तुम्हारे सर में कभी दर्द होता है ?

दूसरा मरीज़—आम तौर पर नहीं।

डाक्टर—अच्छा अपनी जबान दिखाओ। और···और···ठीक है। क्या तुमने अपने अफ़सर की तसवीर देखकर ज़ालिम कहा ?

दूसरा मरीज़—मैं उसको ज़ालिम समझता हूँ। वह कौम को तबाही की तरफ़ ले जाने वालों में से एक है। वह अमन-ओ-अमान के दुश्मनों का साथी है। उसकी तसवीर से भी यही मालूम होता है।

डाक्टर—इसका यह मतलब हुआ कि जेल की रिपोर्ट ग़लत है। तुम्हारी सिर्फ़ आँखें ही नहीं दिल-दिमाग़ भी खराब हैं। आंखों का तो सिर्फ़ एक्सिस (Axis) बदल गया है, मगर दिमाग़ उल्टी बात समझता है और दिल भी कमज़ोर है।

[नर्स दौड़ती हुई आती है।)

नर्स—वह मरीज़ जो अभी पुलिस लाई थी, लेटने से इन्कार करता है और वार्ड के दूसरे मरीजों को लेक्चर देकर अपने जरासीम फ़ैला रहा है।

डाक्टर—लेक्चर देता है? इसका मतलब यह हुआ कि उसकी ज़बान पर भी ज़हर फैल गया है। उसको ऑपरेशन थियेटर में ले चलो। मैं इस मरीज को देखकर अभी आता हूँ।

दूसरा मरीज—क्या उसकी ज़बान काटी जायेगी?

डाक्टर—उसकी जान बचाने के लिए जिस्म के बेकार और ज़हरीले हिस्से को काट डालना ही पड़ेगा।

दूसरा मरीज—बेचारे की ज़बान! उसकी ज़बान में क्या खराबी है?

डाक्टर—नाज़ी पार्टी के खिलाफ़ लेक्चर देता है इससे बढ़कर और क्या खराबी होगी? अगर उसकी ज़बान फ़ौरन न काटी गई तो न सिर्फ़ वह तबाह हो जायेगा बल्कि उसकी छूत बहुत से तन्दुरुस्तों की सेहत खराब कर देगी। अगर किसी मरीज का हाथ सड़ जाये तो बाक़ी जिस्म को बचाने के लिए हाथ काट डालना चाहिये। इसी तरह उसकी ज़बान काटनी पड़ेगी।

दूसरा मरीज—तो क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हारी यह ज़ालिमाना चारागरी (इलाज) सच बोलने वालों को सच्चाई से, इन्साफ़-पसन्दी के हामियों को इन्साफ़ से और अमन पसन्दी के तरफ़दारों को अमन से बाज़ रख सकेगी?

डाक्टर—ये सब बहुत खतरनाक बीमारियाँ हैं। हमने इन बीमारियों

की रोक-थाम के लिए नये-नये ऑपरेशन और अजीबों-ग़रीब इंजेक्शन और दवायें ईजाद कर ली हैं जिनका बहुत जल्द और बहुत अच्छा असर मरीज़ पर होता है। सच बोलने वाले बहुत से मरीज़ झूठ के आदि हो गये। एक मामूली इंजेक्शन ने बहुत से ईमानदारों को ईमानदारी का दुश्मन बना दिया। बहुत से इन्साफ़-पसंदी के मरीज़ हमारी दवा की दो-तीन खुराकों के बाद इन्साफ़ के नाम को भूल गये। और सबसे बुरा और आम मर्ज़ इन्सानियत तो हमने एण्टी-वेक्सिनेशन (Anti-Human Vaccination) से ऐसा खोजा है कि हमारी नाज़ी फ़ौज में यह मर्ज़ नाम को भी नहीं।

दूसरा मरीज़—क्या मतलब? यानी तुम इन्सानियत के भी दुश्मन हो?

डाक्टर—तुम बहुत भोले हो। जब तक यह कमज़ोरी हम में ही दूर न हो उस वक़्त तक हम जंगजू नहीं हो सकते। इसलिए हम नाज़ी बच्चों, बुड्ढों, जवानों, मर्दों और औरतों को सिर्फ़ चेचक, हैज़े और प्लेग के ही टीके नहीं लगाते बल्कि यह टीका भी लगाते हैं। क्या तुम्हारे यह टीका नहीं लगा है?

दूसरा मरीज़—नहीं, मैं बर्लिन का रहने वाला नहीं हूँ। देहात से आया हुआ था यहाँ।

डाक्टर—मगर हमारे वेक्सिनेटर तो देहातों में भी घूम रहे हैं और जंग के ज़माने में तो इस वबा को हम अपने मुल्क में रख ही नहीं सकते। तुम्हारे सबसे पहले यह टीका लगना चाहिये।

दूसरा मरीज़—[घबराकर] नहीं नहीं, मैं हरगिज़ अपनी इन्सानियत से हाथ धोना नहीं चाहता।

डाक्टर—कोई तकलीफ़ न होगी, तुम चुप रहो। ब्वाय, फ़ौरन टीके का सामान लाओ।

दूसरा मरीज—नहीं डाक्टर साहब, मुझे जहर दे दीजिये मुझे मार डालिये। मैं इन्सान पैदा हुआ हूं। इन्सानियत मेरा हक़ है। मैं इन्सानियत को खोकर ज़िन्दा नहीं रहना चाहता।

डाक्टर—तुम में इन्सानियत के बहुत से जरासीम हैं तुम फौरन ठीक हो जाओगे घबराओ नहीं। यह वैक्सिनेशन तुम सब को बहुत जल्द इन्सानियत से दूर कर देगा, तुम इन्सानियत का जामा उतार फ़ेंकोगे। यह बहुत उमदा चीज है। इसमें शेर और दूसरे दरिन्दों का सत् है और पागल कुत्ते जो हम बड़ी मुश्किल से मुहैया करते हैं उनका जौहर इस इंजेक्शन में मौजूद है।

दूसरा मरीज—मैं दारिन्दा बन कर नहीं रह सकता, मैं पागल कुत्तों की तरह भौंकना नहीं चाहता। मैं इन्सान हूँ मुझको इन्सान रहने दो।

डाक्टर—कोई फ़िक्र की बात नहीं। तुम्हारी इन्सानियत रग-रग से खिचकर छोटे से ज़ख्म की सूरत में बाजू पर आजायेगी। ज़ख्म थोड़े दिनों में सूख जायेगा। और इन्सानियत खुरण्ड बन कर झड़ जायेगी। उसके बाद तुम आला दर्जे का नाज़ी हो जाओगे। तुमको वार स्पिरिट मिक्सचर (War Spirit Mixture) की दो तीन खुराकें बड़ा जंगजू बना देंगी।

[कदमों की चाप]

ब्वाय—टीके का सामान दुरुस्त है।

दूसरा मरीज—मुझे छोड़ दो या गोली मार दो। मैं इन्सान हूँ और इन्सान रहना और इन्सान ही रह कर मरना चाहता हूँ।

डाक्टर—बको मत। यह सब इन्सानियत का क़ुसूर है कि तुम जंगजू बनना और इन्सानियत के खिलाफ़ जंग में हिस्सा लेना नहीं चाहते। हम वादा करते हैं कि हम तुमको बिल्कुल इन्सान न रहने देंगे। तुम पक्के नाज़ी बन जाओगे। सूरत आदमियों

की-सी होगी मगर दारिन्दों की तरह फाड़ खाने की स्पिरिट पैदा हो जायेगी। तुम सच, इन्साफ़, इमानदारी, रहम दिली शराफ़त, और इसी क़िस्म की बहुत सी छोटी-छोटी बीमारियों से बच जाओगे। चलो इधर।

दूसरा मरीज़—नहीं डाक्टर, मुझे छोड़ दो ख़ुदा के लिए मुझे छोड़ दो।

[नर्स के कदमों की चाप]

नर्स डाक्टर, वह मरीज़ ऑपरेशन थियेटर में है।

डाक्टर—मेरा खयाल है उसके भी टीका नहीं लगा है। पहले उस पर भी टीकों का इम्तिहान किया जाये। अच्छा इनको टीका लगाने के बाद देखा जायेगा।

दूसरा मरीज़—मैं यह टीका जानवर बना देने वाला नहीं लगवा सकता।

डाक्टर—नहीं तुम तो जानवर नहीं बन सकते। हमारा ज़िम्मा है कि दुम नहीं निकलेगी; चलो बढ़ो इधर।

दूसरा मरीज़—[रोनी आवाज़ में] डाक्टर साहब मुझे छोड़ दीजिए मैं बिल्कुल अच्छा हूँ। मैं टीका नहीं लगवाऊँगा।

डाक्टर—इसको पकड़लो ब्वाय। नर्स तुम टीके का सामान संभालो।

दूसरा मरीज़—[चीख कर] अरे मार डाला! मेरी इन्सानियत खत्म करदी [ज़ोर से] आह-आह—

डाक्टर—बस बस! ब्वाय, इसको आराम से लिटा दो यह बेहोश हो रहा है।

नर्स—और वह मरीज़?

डाक्टर—हाँ अब उसको लाओ। उसके भी टीका लगा दिया जायेगा।

[नर्स जाती है।]

ब्वाय—इसने आँखें बन्द करलीं।

डाक्टर—टीका असर कर रहा है। एक घण्टे तक इसे बेहोश रहना

चाहिए। उनके बाद होश में आते ही इसको एक खूराक बार-स्पिरिट मिक्सचर की देदी जाये।

ब्वाय—कल जो मरीज़ आये थे आज वे सब बिल्कुल ठीक हैं। इस मिक्चर ने सबको बहादुर नाज़ी बना दिया है।

डाक्टर—ये मरीज़ भी ठीक हो जायेंगे और जो मरीज़ ठीक हो गये हैं उनको फ़ौरन छावनी भिजवा दो।

[क़दमों की चाप जंज़ीरों की आवाज़]

नर्स—देखो खामोश चले आओ। हम तुमको बिल्कुल अच्छा करना चाहते हैं। तुम बहादुर नाज़ी बन जाओगे।

मरीज़—खूंख्वार बनाना चाहती हो? दरिन्दा बनाना चाहती हो जो इन्साफ़ और सदाक़त (सत्य) अमन और आदमियत के खिलाफ़ जंग करे।

डाक्टर—चुप रहो! हम अभी तुम्हारी सब तकलीफ़ें दूर कर देंगे। इधर आओ, आगे बढ़ो।

मरीज़—यह ज़ुल्म है। मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ तुम मेरी फ़ितरत (प्रकृति) बदल रहे हो। तुम जर्मनी को तबाही की तरफ़ ले जा रहे हो।

डाक्टर—चुप रहो। शोर न मचाओ। तुम अभी ठीक हो जाओगे। तुम्हारे कभी टीका लगा है?

मरीज़—लगा है। चेचक और प्लेग दोनों का लगा है। हैज़े का टीका नहीं लगा इसलिए कि मैं खुद ही फ़ाके करता हूँ।

डाक्टर—नहीं नहीं, तुम नहीं समझे! नाज़ी बनाने का टीका लगा है तुम्हारे?

मरीज़—मैं कलंक का टीका कभी न लगने दूंगा। तुमने सारी कौम का नास मारा, जर्मनी को दरिन्दों का जंगल बनाकर रख दिया और उन्हीं दरिन्दों का शिकार खेलने के लिए दुनिया को मजबूर कर दिया।

डाक्टर—नहीं लगा है इसके टीका और यह सब इसकी खराबी है। हमारे वैक्सिनेटर न जाने क्यों सो रहे हैं? उनको हुक्म है कि कोई जर्मनी का बाशिन्दा बग़ैर टीका न रहे। ब्वाय इसको पकड़ लो।

मरीज़—[बुलन्द आवाज़ से] ज़बरदस्ती है! [और ज्यादा बुलन्द आवाज़ से] बरबरियत है।

डाक्टर—ये सब बातें यह टीका पैदा कर देगा। इत्मीनान रखो। ब्वाय, इसको आगे बढ़ाओ।

मरीज़—अरे मैं मर जाऊंगा। मार डाला! मार डाला! उफ़! आह!

डाक्टर—बस ठीक है। लिटा दो इसको आराम से!

[टेलिफ़ोन की घण्टी]

डाक्टर—ब्वाय, टेलिफ़ोन सुनो।

ब्वाय—[रिसीवर उठाकर] बर्लिन हॉस्पिटल। कहाँ से? रेश्ताग़? ...अच्छा...अच्छा...हाँ डाक्टर साहब मौजूद हैं। कौन? ...जनरल वान उफ़....हाँ...हाँ। अभी...अभी कहता हूँ। ओ० के०।

[रिसीवर रखने की आवाज़]

डाक्टर—कौन था?

ब्वाय—[घबराई हुई आवाज़ में] नाज़ी मिलिटरी सेक्रेटरी के प्राइवेट सेक्रेटरी का फ़ोन है। रेश्ताग़ में एकदम जनरल वान उफ़ पर दौरा पड़ा है, सब उसको सँभाले बैठे हैं और वे बार-बार यही कह रहे हैं कि सुलह कर लेनी चाहिये। उन्होंने सुलह करने के हक़ में बहुत बड़ी तक़रीर की है। आपको फ़ौरन तलब किया है।

डाक्टर—सुलह का दौरा है। अच्छा हेण्ड बैग, इंजेक्शन का सामान, वार स्पिरिट मिक्सचर के तीन-चार डोज़ फ़ौरन मोटर पर

रखो। और उन मरीज़ों को देखते रहो। होश में आते ही मिक्सचर दिया जायेगा। मैं जनरल उफ़ का इलाज करके अभी आता हूँ। सुलह का दौरा [बड़बड़ाता हुआ जाता है।] सुलह का दौरा खतरनाक बात है।

[क़दमों की चाप ग़ायब हो जाती है और मोटर रवाना होने की आवाज़ आती है।]

नर्स—वार्ड ब्वाय ! वार्ड ब्वाय !

[शीशियाँ इधर-उधर रखने और दवा उँडेलने की आवाज़]

ब्वाय—[आकर] मिस साहबा, मुझको पुकारा था ?

नर्स—देखो तुम मरीज़ों को देखते रहो। होश आने ही वाला है, यह मिक्सचर फ़ौरन ही पिलाना होगा।

ब्वाय—मिस साहबा, वह देखिये आँख खोल रहा है।

नर्स—और यह मरीज़ भी मुँह चला रहा है। [ज़रा ऊँची आवाज़ में] कैसा है तुम ?

मरीज़—[पागलों की तरह हँसकर] मारो मारो ! [फिर डरावनी हँसी हँसकर] मारो !…मारो !…और मारो ! [क़हक़हा]

नर्स—ब्वाय, फ़ौरन मिक्सचर दो। टीका कामयाब रहा, अब इसका दिमाग़ ठीक है।

ब्वाय—लो इसे पी लो। ए जी सुनते हो इसे पीलो।

मरीज़—[पागलों की तरह हँसकर] तुम भी मारो ! उड़ा दो [हँसता है।]

ब्वाय—इसे पीजाओ ! बहादुर नाज़ी, जल्दी ही पीलो।

मरीज़—पीलो…पी…लो—[हँसता है] पिलाओ, पिलाओ। पिलाओ, पियो, पीलो। (हँसता है।)

नर्स—बहुत उम्दा, बहुत अच्छा असर हो रहा है। बिल्कुल ठीक हो गया यह मरीज़। ब्वाय, देखो दूसरा मरीज़ अंगड़ाई ले

रहा है। इस मरीज़ को हटा दो नहीं तो दोनों आपस में लड़ पड़ेंगे।

श्वाय—आओ जवान इधर आओ। तुम्हें बन्दूक़ दें, तोप दिखायें।

मरीज—(खौफ़नाक हँसी के साथ) मार डालो, जो मिले मार डालो कोई न बचे। (रोता है) तोप, बन्दूक़ (हंसता है) तोप, बन्दूक़। (क़हक़हा)

नर्स—लो जल्दी ही यह दवा पी लो। बहादुर नाज़ी, इसे पीजाओ।

दूसरा मरीज—(क़हक़हा बुलन्द करके) तोप लाओ, बन्दूक लाओ और बन्दूक़। (क़हक़हा)

नर्स—अब तुम बिल्कुल ठीक हो बहादुर हो, सिपाही हो। लो इसे पीलो।

दूसरा मरीज़—आग लगा दो। (क़हक़हा बुलन्द करके) उजाड़ दो वीरान करदो ! मारो, लूटो, (क़हक़हा)

नर्स—ओह बहुत उम्दा असर। बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गया। इसे पीलो।

(कुछ पीने की आवाज़) ठीक है। [मोटर रुकने की आवाज़]

श्वाय—[आते हुए) डाक्टर साहब आगये शायद।

नर्स—(शीशी रखते हुए) हाँ डाक्टर आगये।

[क़दमों की चाप]

डाक्टर—नर्स क्या हाल है मरीज़ों का ?

नर्स—बिल्कुल ठीक हो गये। बड़ा अच्छा असर किया है टीके ने। जनरल वान डफ़ का क्या हुआ ?

डाक्टर—एक दम दिमाग़ सीधा हो गया था। तक़रीर करते-करते उसने नाज़ी पार्टी की धज्जियाँ उड़ाना शुरू करदीं और आख़िर में तो ऐसा बहका कि सुलह की अपील करने लगा। मैंने जाते ही उसे रेश्ताग़ से निकाला।

नर्स—रेश्ताग़ को तो डिसइन्फ़ेट (Disinfect) करना चाहिये था।

डाक्टर—फ़ौरन मैंने हुक्म दिया है कि कैम्प बिल्डिंग डिस इन्फ़ेक्ट की जाये और तमाम मेम्बरों को वार स्पिरिट का एक-एक डोज़ पीने की हिदायत की।

नर्स—तो अब जनरल वान उफ़ ठीक हैं न बिल्कुल ?

डाक्टर—ठीक कैसी न होते टीका तो उनके लग ही चुका था। मैंने जाते ही उनके सौ फीसदी का एण्टी पीस (Anti peace) इंजेक्शन दिया पहले तो बहुत उछले-कूदे। उसके बाद खड़े होगये तक़रीर करने और जो कुछ सुलह की ताईद में कह चुके थे ख़ुद ही तरदीद कर दी।

नर्स—सब बहुत खुश होंगे ?

डाक्टर—गाईरिंग ने मुझे गोद में उठा लिया और बाक़ी तमाम मेम्बरों ने मुबारक बाद ही मैं इन मरीज़ों के ख़्याल से ज़्यादा ठहरा नहीं। हाँ तो ये मरीज़ कैसे हैं ?

नर्स—अभी होश में आये हैं मैंने मिक्सचर पिला दिया है और अब वे बिल्कुल नाज़ियों जैसी बातें करते है। बुलाऊँ मैं उनको ?

डाक्टर—साथ-साथ नहीं, एक-एक करके ;

[नर्स जाती है।]

क्वाय—हूज़ूर इतनी जल्दी पलटे हैं सेहत की तरफ़ कि ताज्जुब होता है।

डाक्टर—इनको इस दवा से ठीक होना ही चाहिये। अगर ये दवायें होतीं तो आज मैदान में नाज़ी झण्डे के नीचे सरफ़रोशी करने वाला एक भी न मिलता।

क्वाय—दवायें क्या हैं जादू का असर रखती हैं। बड़े-बड़े पुराने और पैदाइशी सुलहपसन्द, रास्तबाज़, ईमानदार और सच्चे एक ही टीके और एक ही खुराक में ऐसे तन्दुरुस्त हो गये जैसे वे कभी बीमार न थे।

[नर्स आती है और उसके साथ डरावनी हँसी हँसता हुआ

मरीज़ आता है]

डाक्टर—कहो दोस्त क्या हाल है ? लड़ाई पर जाओगे ?

मरीज़—ज़रूर जायेंगे। मारेंगे, लूटेंगे। [क़हक़हा] तोप, बन्दूक़, मशीनगन ! [क़हक़हा]

डाक्टर—मगर देखो तो यह बात सुलह के ख़िलाफ़ है। सुलह कितनी अच्छी चीज़ है !

मरीज़—सुलह, हिस्त ! सुलह फ़ालिज को कहते हैं, सुलह बुज़दिली है। हंगामा, आफ़त, क़यामत [क़हक़हा] तोप, बन्दूक़ ! [लगातार क़हक़हा]

डाक्टर—शाबाश बहादुर ! मगर सुनो तो सही यह लड़ाई इन्सा-नियत के खिलाफ़ है।

मरीज़—इन्सानियत ? [हँसता है] इन्सानियत ढोंग है ! नाज़ी को आदमी बनाने वाली कमज़ोर चीज़ लड़ाई के दुश्मन। हम लड़ेंगे, क़यामत मचा देंगे।

डाक्टर—तो ठीक है बहादुर सिपाही, मगर ईमानदारी ?

मरीज़—[बहुत ज़ोर से हँसकर] ईमानदारी तो तोप से उड़ा देंगे। हम नाज़ी हैं ईमानदारी से लड़ेंगे। ईमानदारी का पीछा करेंगे। [क़हक़हा]

डाक्टर—बिल्कुल ठीक है। अच्छा देखो नर्स इसके कान बहरे कर दो ताकि यह जय के हँगामों की आवाज़ के अलावा अपनी ही कहे, किसी और की न सुने। याद रखो सबसे पहला नाज़ी उसूल है कि बारह हाथ की ज़बान हो और कान नदारद।

नर्स—मैं इसे बहरा किये देती हूँ, अक़्ल के दरवाज़े बंद ही हो चुके हैं और अब यह पूरा नाज़ी बन गया है।

डाक्टर—हाँ इसे बहरा करके छावनी भेज दो और दूसरे मरीज़ को लाओ।

श्राय—लाइये मिस साहिबा मैं इसको बहरा करने के कमरे में पहुँचा दूं।

[टेलिफ़ोन की घण्टी]

डाक्टर—[रिसीवर उठाकर] हाउस सर्जन बर्लिन हॉस्पिटल। अच्छा, अच्छा हां, बिल्कुल ठीक है। बहुत अच्छा किया। [नर्स आती है] ओह बहुत अच्छा इन्तजाम किया है! बेशक हम सबने ग़लत समझा था। ठीक है बिल्कुल ठीक, बाई बाई!

नर्स—कौन था?

डाक्टर—सुपरिन्टेन्डेन्ट पागलख़ाना। उसने कहा कि हम लोगों ने मुद्दतों से ग़लती की थी कि बहुत से पागल जेलख़ाने में भर रखे हैं और कारामद नाज़ियों को ख्वाहमख्वाह पागलख़ाने में भर रखा है। मगर अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इन सबको फ़ौज में होना चाहिये और जेल वाले क़ैदियों को असल में पागलख़ाने में होना चाहिये।

नर्स—डाक्टर, आखिर इस बात पर आज तक किसी ने ग़ौर क्यों नहीं किया था? वे सचमुच बने-बनाये सिपाही हैं।

डाक्टर—और जेल वाले बने-बनाये पागल।

नर्स—बिल्कुल, अच्छा तो अब इस ग़लती को ठीक किया गया है।

डाक्टर—हां, सारा पागलख़ाना खाली करके फ्रंट पर भेज दिया गया है और जेल को पागलख़ाना बना दिया गया है।

नर्स—ठीक है। अच्छा अब इस मरीज़ को देखो यह चुप बहुत रहता है।

डाक्टर—यह तो वही है न जिसको आज ही इस पहले मरीज़ के साथ इंजेक्शन दिया गया है।

नर्स—हां हां, वही तो है।

डाक्टर—क्यों तुम कैसे हो? क्या हाल है तुम्हारा?

दूसरा मरीज़—मैं खाली बैठे-बैठे थक गया हूं। किसका मुंह नोचूं?

क़िससे लड़ूं ? [वहशियों की तरह] किसको गोली का निशाना बना दूं, किसको फाड़ खाऊँ ?

डाक्टर—बुरी बात ! बहुत बुरी बात ! ये सब इन्सानियत के खिलाफ़ बातें हैं।

दूसरा मरीज—इन्सानियत ? इन्सानियत कैसी ? [क़हक़हा लगा कर] इन्सानियत क्या होती है ? हम नाज़ी हैं। इन्सानियत को हम क्या करेंगे ?

डाक्टर—तुम लड़ना चाहते हो, मगर यह बहुत बुरी बात है कि हक़ के खिलाफ़ लड़ो।

दूसरा मरीज—हमारा हक़ सिर्फ लड़ना है और धूम मचाना हमारा हक़ है। हम सिर्फ़ शरपसन्द हैं। हंगामा हमारा हक़ है जंग हमारा हक़ है और बाक़ी हक़ कुछ नहीं।

नर्स—देख रहे हो डाक्टर कितने हैरतअंगेज़ (आश्चर्यजनक) तरीक़े पर असर हुआ है।

डाक्टर—इसको भी बाहर करके छावनी रवाना कर दो।

दूसरा मरीज—[क़हक़हा लगाकर] छावनी .... छावनी..... नहीं तोप, तोप, तोप का गोला, बम का गोला [लम्बा क़हक़हा]

[आवाज़ धीरे-धीरे ग़ायब हो जाती है।]

लाटरी का टिकट

[मुन्शी जी की बीवी चूल्हा फूंक रही हैं, मुन्शी जी आते हैं।]

बीवी—मुई गीली लकड़ियां उठाकर दे दीं, जैसे खैरात ही में तो दी हैं।

[मुन्शी जी आते हैं।]

मुन्शी जी—अरे भई कहां गईं? लाहौल वला क़ूवत वही हांडी-चूल्हा छोड़ो भी इसे। मैं पूछता हूं कोई तार तो नहीं आया ?

बीवी—तार, कैसा तार ?

मुंशी जी—यानी मालूम भी है आज सात तारीख है। आज ही तो तार आयेगा उस लाटरी का।

बीवी—तौबा है मैं तो समझी कि सचमुच किसी का तार आने वाला है। और मैं पूछती हूं अब के ये लकड़ियां कहां से उठा लाये थे ?

मुंशी जी—अजी जहन्नुम में डालो इन लकड़ियों को और छोड़ो इस चूल्हा-हांडी को।

बीवी—ऐ वाह ! चले वहां से छोड़ो चूल्हा-हांडी को। और खाने के वक़्त मैं क्या दूंगी अपना कलेजा ?

मुंशी जी—होटल से आजायेगा। तुम ज़रा मेरी बात तो सुनो, कुछ जरूरी मशवरे करने थे और तुम हो कि समझती ही नहीं हो।

बीवी—[फुंकनी फेंकते हुए] कहो क्या कहते हो ?

मुंशी जी—वह टिकट भी रख लिया है संभाल के ? पहले तो वह मुझे निकाल कर देदो फिर दो घड़ी बैठकर मुझ से बातें करलो।

बीवी—टिकट निकाले देती हूं मगर हांडी में देर हो जाएगी और नसीम स्कूल से आकर मेरा सर खायेगा।

मुंशी जी—जाओ जाओ तुम टिकट निकालो।

[दरवाज़े पर दस्तक होती है।]

मुंशी जी—कौन है भाई ?

सलीम—मैं हूँ सलीम।

मुंशी जी—तो आ जाओ ना तुम से छिपता कौन है ?

सलीम—आदाब अर्ज है।

मुंशी जी—जीते रहो। कहो खैरियत है ? दुल्हन और बच्चे सब अच्छे हैं ?

सलीम—जी हां, सब अच्छे हैं। उनको नजला है, बड़ा बच्चा बुखार में मुब्तिला है और छोटे के चेचक निकल आई है।

मुंशीजी—[बात काटकर] खैर खैर। बहर हाल खैरियत है। रास्ते मे तारघर का कोई आदमी तो बाइसिकल पर नजर नहीं आया ?

सलीम—जी नहीं तो। क्यों ख़ैरियत तो है ?

मुंशी जी—हां एक तार का इंतजार है। यहां तुमने जर्द बाग़ के चौराहे के क़रीब लाल रंग की दुमंजिला कोठी देखी है जिसके बाहर बाग़ बग़ैरा लगा हुआ है मेरा मतलब यह है कि चमन।

सलीम—जी हां वह कोठी जो आजकल बिक रही है ?

मुंशी जी—हां हां वही। कैसी है वह ? क्या राय है तुम्हारी अगर मैं उसको लेलूं ?

सलीम—आप ?

मुंशी जी—हां और क्या मेरा खयाल है लेलूं, पड़ी रहेगी।

[बीवी आती है।]

सलीम— आदाब अर्ज़ भाभी।

बीवी—जीते रहो। अच्छे तो हो ? [मुन्शी जी से] लो यह टिकट संभालो।

मुंशी जी—हाँ यही है। तो मियाँ सलीम वैसे बुरी तो नहीं है ? वह उसके चालीस हज़ार माँगते हैं और ख़याल यह है कि पैंतीस तक दे देंगे।

बीवी—क्या चीज़ ?

मुंशी जी—भई आज एक कोठी देखी है। अच्छी ख़ासी है। बजाय इसके कि ज़मीन ख़रीदी जाये, फिर उसी पर इमारत बने, चमन लगाया जाये और इस क़िस्म के बहुत से दर्द-सर मोल लिये जायें, मेरे ख़याल में तो अगर यह कोठी मिल जाये तो सब से अच्छा। अभी नई है शायद दस बरस की हो।

बीवी—तो कौन ले रहा है वह कोठी ?

मुंशी जी—फिर वही ? अरे साहब मेरा ही इरादा है और कौन लेता ? मियाँ सलीम मोटर रखने की भी जगह है, हवादार, आलीशान ......।

बीवी—[बात काट कर] मुझे ये शेख़ चिल्लयों की-सी बातें पसंद नहीं।

मुंशी जी—शेख़ चिल्लियों की-सी बातें ? तुम तो हो बेवक़ूफ़। जब उस कोठी में जाकर बैठोगी रानी साहब बनकर तो उस वक़्त पूछूँगा मिज़ाज शरीफ़।

सलीम—आख़िर मालूम तो हो क़िस्सा क्या है। यानी क्या आप वाक़ई ख़रीद रहे हैं कोठी ?

मुंशी जी—हाँ भई ख़याल तो है मेरा। आज एक हफ़्ते से उसी चक्कर में था। पहले तो एक नक़्शा बनवाया। वह किधर गया नक़्शा ? मैंने कहा सुनती भी हो। लाहौलवला क़ूवत।

वह फिर चूल्हे के पास पहुँचीं।

बीबी—हाँडी जली जा रही थी आखिर मैं क्या करूँ तुम्हारी ऊट-पटांग बातें सुनकर ? न किसी बात का सर न पैर।

मुंशी जी—अच्छा तुम न सुनो मगर मेरा बस्ता तो देदो जिसमें नक्शा वग़ैरा रखा है।

सलीम—तो क्या नक्शा आपको पसन्द नहीं आया ? मगर सवाल यह है कि…… ।

मुंशी जी—[बात काट कर] नक़शा तो अच्छा है, मगर भई मैं ज़रा जल्दबाज़ वाक़े हुआ हूँ। यह कोठी तैयार खड़ी है और नक़्शे वाली कोठी बनवाने के लिए इन्तिज़ाम की ज़रूरत है।

कौन जीता है तिरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक

बीबी—[आते हुए] लो संभालो यह बस्ता।

मुंशी जी—इधर आओ खिसक आओ मियाँ सलीम। किधर गया मेरा चश्मा ? तोबा, तोबा ! ये लोहे की कमानी के चश्मे भी कितने ज़लील होते हैं। एक शरीफ़ आदमी के पास कम से कम एक दर्जन चश्मे होने चाहियें। सब अलग-अलग वज़ा के और सब सोने की कमानी के। हाँ यह रहा चश्मा देखो मियाँ सलीम यह नक़्शा है। वैसे तो अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ इसमें सब चीजें आराम की हैं मगर वह लाल कोठी वाली बात कहाँ ? फिर वह तैयार भी है।

बीबी—सलीम, ज़रा इनसे पहले पूछो कि रुपया कहाँ है।

मुंशी जी—फिर वही ? अरे साहब रुपये की क्या बात है यहाँ ? मगर मैं पूछता हूँ कि अगर इस वक़्त एक दम से छप्पर फट पड़े तो तुम्हारा क्या होगा। हम तो अपने इंतिज़ाम से रहें।

सलीम—आख़िर यह मुआमला क्या है ? मैं तो खुद हैरान हूँ।

मुंशी जी—तुम इनको कहने दो। हाँ तो इस नक़्शे में हमने एक

हौज़ भी रखवाया था, जिसमें फौवारा हो और रंगीन मछलियाँ उसमें तैरती हों। यह बात लाल कोठी में नहीं है मगर हौज़ बनाने की जगह ज़रूर है लिहाज़ा कोई बात नहीं, हौज़ हर वक़्त बन सकता है।

बीवी—अच्छा तुम खयाली पुलाव पकाते जाओ मगर मैं तो हांडी देखूं।

मुंशी जी—जाओ मेरा क्या। मगर बाद में तुम ही कहोगी कि किसी सलाह-मशवरे में शरीक नहीं किया। मैं तो यह कहता था कि तुम भी चलकर कोठी देख लेतीं खैर आज नहीं मगर परसों तक मोटर में चल कर देख लेना।

बीवी—मोटर पर नहीं हवाई जहाज़ पर।

मुंशी जी—क्या मानी? यानी तुम हर बात ग़लत समझती हो। आख़िर मैं कोई घास खा गया हूं जो मोटर कंपनियों की फ़ेहरिस्तें बटोरता फिरता हूं? मियाँ सलीम, मेरे नज़दीक तो मोटर की ख़ूबी यह है कि तेल कम ख़र्च हो और उसका हर पुर्ज़ा आसानी से मिल सके। मगर मैंने यह तै किया है कि मैं एक छोटी सी गाड़ी रखूंगा रोज़मर्रा के इस्तेमाल के लिए और बाद में एक ज़रा क़ीमती और बड़ी भी होना चाहिये।

सलीम—यानी सचमुच के सड़कों पर चलने वाले मोटर।

मुंशी जी—भई अजीब अहमक़ हो तुम भी। और नहीं तो क्या कूकदार बच्चों का खिलौना।

बीवी—ऐ तो वह क्या जानें। तुम भी तो पहेलियाँ बुझाते हो।

मुंशी जी—सुनो मियाँ, मैंने बहुत से मोटरों के मुताल्लिक़ तहक़ीक़ात की है और जो दो पसन्द किये हैं उनकी तसवीर दिखाता हूं तुम्हें। इस फ़ेहरिस्त में है [फ़ेहरिस्त खोल कर] यह देखो यह तो है छोटा मोटर।

सलीम—बड़ा ख़ूबसूरत है।

मुंशी जी—फिर तेल भी कम खर्च होता है और ऐसा छोटा भी नहीं बस मुनासिब है। इसकी गद्दियां ऐसी लचकदार होती हैं कि......तुम शायद कभी मोटर पर नहीं बैठे बस यह समझ लो कि उम्दा क़िस्म का सोफ़ा।

बीवी—ऐ और क्या वह काहे को बैठने लगे ?

मुंशी जी—हां खैर। और इसमें एक ख़ूबी यह है कि शीशे चढ़ा कर ताला बन्द कर दो तो कोई खोल नहीं सकता, बहरहाल मुनासिब है इसकी क़ीमत साढ़े, खैर कमीशन काट कर कोई तीन हज़ार के क़रीब होगी।

बीवी—और तुम्हारे पास तीन हज़ार रखे हुए हैं। पहले तक़ाज़ा करने वालों के मुंह तो बन्द करो। चले हैं वहां से हवा में क़िले बनाने। घर में नहीं दाने अम्मा चली भुनाने।

मुंशी जी—अरे साहब तो क्या मैं ले आया हूं मोटर ? मैं तो एक बात कहता हूं कि अगर लेना पड़ ही जाये तो मैं बिल्कुल कोरा न निकलूं। क्या मैं जानता नहीं कि इस वक़्त मोटर तो क्या छकड़ा भी नहीं ले सकता मगर ख़ुदा की देन ही तो है जो ख़रीदना ही पड़े तो।

सलीम—तो फिर यही मोटर लीजियेगा ?

मुंशी जी—भई वह तो छप्पर फाड़ के देता है। पार साल कलुआ को कौन नहीं जानता था कि क्या है मगर अब सेठ कल्लू मल बना हुआ है। क्या हम उससे भी गये-गुज़रे हैं ?

सलीम—मगर मेरी अक़्ल हैरान है कि आज यहां ये बातें कैसी हो रही हैं। आख़िर यह सब क्या है कुछ मालूम भी तो हो।

मुंशी जी—मैं पूछता हूं कि क्या यह नामुमकिन है और क्या यह हो ही नहीं सकता कि कलुआ साईं की तरह मेरी हालत भी बदल जाये। आख़िर उसके कौन सा सुर्ख़ाब लगा हुआ है।

सलीम—मगर आज आपको यह खयाल क्यों आया बैठे बिठाये। आख़िर ये बड़े आदमियों की सी बड़ी बातें बिला वजह तो हो नहीं सकतीं।

मुंशी जी—भई बात यह है कि अब के मैंने भी लाटरी का टिकट लिया है।

सलीम—लाटरी का टिकट [क़हक़हा लगाता है।]

मुंशी जी—यानी तुम भी हंस रहे हो। अगर कोई किसी लाटरी का टिकट ख़रीदते ही हैं और कोई साल ऐसा भी नहीं जाता जब किसी-न-किसी के नाम इनाम न मिले। फिर मैंने कौन सी हिमाक़त की है जिस पर आप लोगों की हंसी रुकती नहीं ?

सलीम—भाई साहब, हंसने की वजह यह है कि ये सब कुछ हवाई मंसूबे हैं गोया।

मुंशी जी—मियां दुनिया उम्मीद पर क़ायम है। तुम चले हो वहां से हवाई मंसूबे लेकर। और जो इसी बहाने मेरी क़िस्मत में दौलत लिखी हो तो ?

बीवी—तो यह कौन कहता है ? मगर तुम तो इस तरह की बातें कर रहे हो कि जैसे दौलत मिल ही तो गई हो।

मुंशी जी—किस तरह की बातें ? यानी अगर मैं कुछ मालूमात हासिल कर रहा हूं ताकि ज़रूरत के वक़्त बिल्कुल कोरा ही न साबित हूं और टापता न फिरूं तो यह भी गोया मेरी हिमाक़त और लोगों के हंसने की बातें हैं क्यों ?

सलीम—भाई साहब, ख़ुदा करे अब के आप ही को इनाम मिल जाये मगर लाटरी के इनाम की उम्मीद पर इस तरह इंतिज़ाम करते हुए मैंने आप ही को देखा है।

मुन्शी जी—इंतिज़ाम ? तो मैंने आखिर कौन सा इंतिज़ाम किया है ? यही ना कि कोठी अपनी नज़र में है और मोटर के

लिए फ़ैसला कर लिया है ताकि ऐन वक़्त कम-से-कम यह तो न हो कि कोठी की जगह जल्दी में ज़मीन खरीदनी पड़े और मोटर की जगह पानी छिड़कने की गाड़ी। साहबज़ादे इसको इंतिज़ाम नहीं दूरअंदेशी कहते हैं। मेरे ज़हन में इनाम पाने के बाद की तमाम स्कीमें हैं ? ताकि हमें वर वक़्त कुछ सोचना न पड़े।

सलीम—तो यह कहिये कि आपने उसके बाद की भी बहुत कुछ चीज़ें सोच ली हैं ?

मुन्शी जी—नहीं खैर सोची तो नहीं हैं अलबत्ता यह खयाल ज़रूर है कि अगर एकदम से लखपति बन गया तो मुझे लखपति की-सी बातें किसी और से सीखनी न पड़ें। मसलन बच्चे की पढ़ाई म्यूनिसिपल स्कूल में नहीं बल्कि किसी अंग्रेज़ी स्कूल में करवाई जायेगी। भला बताओ तो वहाँ का क्या खर्च होगा ?

सलीम—सो रुपया महीना।

मुन्शी जी—जी हाँ। हमें याद है जब हमारे अब्बा रिटायर हुए थे तो उनकी तन्ख्वाह पचास रुपये महीने हो गई थी तो उनको खानदान में रईस समझा जाने लगा था मगर असल में रईस और बड़ा आदमी मैं बनूंगा। पचास-पचास रुपये महीने के तो सिर्फ़ बावर्ची और नोकर रखूंगा।

सलीम—गोया मेरी तनख्वाह से ज़्यादा के तो आपके बावर्ची ही होंगे।

मुन्शी जी—और क्या ? अब तुम ही बताओ कि पचास रुपये से कम के बावर्ची भी क्या अच्छे मालूम होंगे। मैंने तै कर लिया है कि बावर्चीखाने का खर्च अगर किफ़ायत से किया तो पाँच सौ से बढ़ने न पायेगा।

सलीम—यानी पाँच सौ रुपये महीना ?

मुन्शी जी—और नहीं तो क्या पाँच सौ रुपये साल ? भाई बड़े बेवकूफ़ हो। ज़रा यह तो ग़ौर करो कि आये दिन मेरे यहाँ बड़े-बड़े राजा और नवाब मेहमान हुआ करेंगे—कभी अंग्रेज अफ़सरों की दावत होगी तो कभी हिन्दुस्तानी रईसों की। फिर घर वाले भी दाल-रोटी तो खाने से रहे। नौकर-चाकर मामाएं, दामाएं, मुग़लानियाँ वग़ैरा मिलकर कुछ नहीं तो कोई तीस-चालीस आदमी तो घर ही के होंगे बल्कि मेरा खयाल है कि मुझको पाँच सौ से ज्यादा की मंज़ूरी देनी पड़ेगी। क्या खयाल है तुम्हारा ?

सलीम—मेरे खयाल में भाभी को बुला लीजिए। फिर हिसाब लगे।

मुन्शी जी—वह समझ रही हैं मज़ाक़। गोया जो कुछ हो रहा है सब दिल्लगीबाज़ी है। मगर मैं कहता हूँ मियाँ सलीम कि जिन लोगों को लाटरी के टिकट मिलते हैं वह भी आखिर इन्सान ही तो होते हैं कोई चौपाये तो होते नहीं। फिर मेरा दिल गवाही दे रहा है कि इनाम ज़रूर मिलेगा।

सलीम—खुदा करे इनाम मिल जाये तो आपके दिन फिर जायें।...

मुन्शी जी—[बात काटकर] दिन फिर जायें ? यक़ीन जानो कि मैं तो तुम्हारी तरफ़ से इस्तीफ़ा लिख चुका हूँ। यह देखो बस्ते में [बस्ता टटोलता है] मेरा और तुम्हारा इस्तीफ़ा लिखा रखा है। देखो यह रखा है।

सलीम—आपका इस्तीफ़ा तो ठीक है, मगर मेरा ?

मुन्शी जी—[बात काट कर] क्या ख़ूब ! यानी अब दुनिया को मुझ पर हँसवाओगे भी कि लखपति का भाई चालीस रुपल्ली की नौकरी करता फिरता है म्युनिसिपैलिटी में ? तुम जायदाद का काम देखना। मैंने दो गाँव और एक बाग़ पहले से देख रखा है, उसके अलावा और जायदाद भी आख़िर ख़रीदी जायेगी। रुपया महज़ उड़ाना तो है नहीं।

सलीम--तो भाभी को बुला लीजिए। उनको तो शायद किसी बात की ख़बर भी नहीं है।

मुन्शी जी—[आवाज़ देकर] अरे साहब, मैंने कहा सुनती हो।

बीवी—हां-हां सुन रही हूं नसीम को खाना खिला रही थी। [क़रीब आकर] कहो क्या कहते हो? वहीं मुई ठेंठें उड़ रही होंगी।

मुन्शीजी—देखा मियां सलीम तुमने? इसीलिए नहीं बुलाता था।

सलीम—भाभी, बैठ जाइए ना। भाई जान ने तो गांव और बाग़ भी तजवीज़ कर रखा है। और हम दोनों के इस्तीफ़े तैयार हैं।

बीवी—तो फिर इनके पास तार आ चुका होगा। यह बन रहे हैं।

मुंशीजी—तार आ चुका होता तो यहां मैं इस कबाड़खाने में इस तरह बैठा होता? लाहौल वला-क़ूवत! हर चीज़ अजीब है इस घर की। यह घड़ोंची मुलाहिज़ा हो, मालूम होता है कि पुराने ढंग का हल रखा हुआ है। ये चारपाइयां हैं जिन पर हम सोते हैं। मैं तो अपने बाग़ के माली के लिए भी इस क़िस्म की चारपाइयां मुनासिब नहीं समझता। यह देखो मियां सलीम ये बेगम साहब के कपड़े। मालूम होता है जैसे घोसन।

बीवी—ऐ खूब याद दिलाया वह घोसन मुई मेरे नाक में दम किये हुए है। कह गई है कि जब तक पिछले महीने का हिसाब पूरा नहीं हो जायेगा तब तक एक क़तरा भी दूध न देगी।

मुंशीजी—हिश्त, मैं तो अब उससे दूध ले भी नहीं सकता। गंदी, घिनौनी बीमार गायों का दूध दे-देकर और उसमें पानी मिला मिला कर सेहत ख़राब कर दी। अब दूध-मक्खन और मलाई वग़ैरा किसी अंग्रेज़ी डेरी से आया करेगा। दाम ज़रूर ज़्यादा लग जायेंगे मगर चीज़ भी तो अच्छी होगी।

बीवी—खैर वह तो बाद की बात है पहले उसका हिसाब तो चुकाओ और उसी पर क्या है, बनिया अलग आदमी पर आदमी भेज रहा है, मकानदार को जब देखिये मकान खाली करने की

धमकी लिये हुए दरवाज़े पर खड़ा हुआ है। तुम तो रहते तो दिन भर घर के बाहर और नथनों चने चबाने पड़ते हैं मुझको।

मुंशोजी—[ज़रा हंसकर]

सब्र कर सूरते-आराम हुई जाती है
कामयाबी दिले-नाकाम हुई जाती है

यही सब तक़ाज़ा करने वाले इस बात पर फ़ख्र करेंगे कि एक लखपति भी उनका मक़रूज़ (ऋणी) रह चुका है।

बीवी—तो अब तुम्हीं उनको आकर समझाना। वह आकर रोज मेरा दिमाग़ खाली करते हैं। कल कह रहे थे कि···

[दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़]

मुंशी जी—[ज़ोर से] कौन साहब ?

ठेकेदार—मैं हूं ठेकेदार।

बीवी--वही है मकानदार। अच्छा हुआ कि तुम्हारे सामने आगये।

मुंशोजी—अच्छा तो तुम हट जाओ। ज़रा मैं उनको यहीं बुलालूं।

ठेकेदार—[अन्दर आते हुए] आदाब अर्ज़ है मुन्शीजी। आप तो ईद का चाँद हो गये। जब आके पूछा ग़ायब। जब आके पूछा ग़ायब। आखिर यह मामला क्या है कि दो महीने से हम ग़रीबों को नहीं पूछा ? और अब यह तीसरा महीना चल रहा है।

मुंशी जी—जी हां, जी हां यह बात यह थी कि मैं ज़रा मसरूफ़ ज़्यादा था इन दिनों। खैर तो आपका दो महीने का किराया बाक़ी है ना ?

ठेकेदार—हां साहब दो महीने का किराया हो चुका है हांलाकि आपने खुद यह कहा था कि अब के अगर एक महीने का भी किराया चढ़े तो आप मकान खाली करा सकते हैं। मगर फिर भी आपको कुछ खयाल न रहा। आज मैंने कहा कि इस

वक़्त हाज़िर हूँ।

मुंशी जी—ख़ैर किराया तो दिया ही जायेगा मगर ठेकेदार साहब मैं यह पूछता हूँ कि आप इस मकान को अलग क्यों नहीं कर देते ?

ठेकेदार—जी क्या मतलब है आपका ?

मुंशी जी—मेरा मतलब यह है कि अगर आपको मुनासिब दाम कुछ मुनाफ़े के साथ मिल जायें तो आप इस मकान को बेच क्यों नहीं डालते ?

ठेकेदार—आप मुनाफ़ा लिये फिर रहे हैं और मैं तो यहाँ तक तैयार हूँ कि कोई असली दाम देदे तो मैं आज इस झगड़े से निजात हासिल कर लूं। मगर कौन मिलता है मकान का ख़रीदार वह भी इस मुहल्ले में ? जिसको यह मकान लेना होगा वह इतनी रक़म लगाकर किसी शरीफ़ों के मुहल्ले में क़ायदे का मकान बनवायेगा।

मुंशी जी—फिर भी अगर आपको ख़रीदार मैं दूं तो आप किन दामों में इस मकान को अलग कर देंगे ? मगर ज़रा वाजबी ही बताइयेगा।

ठेकेदार—यह तो घर घोड़ी नख़ास मोल हुआ। आप ख़रीदार को लाइये वह मुझसे बातचीत करें। कुछ मैं कहूं, कुछ वह कहें उसके बाद फिर देखा जायेगा। इस वक़्त तो सिर्फ़ बक़ाया किराये का ज़िक्र कीजिये।

मुंशी जी—ओहो वह तो एक अलग चीज़ है। मैं तो यह कह रहा था कि अच्छा साफ़-साफ़ सुन ही लीजिये कि मैं इस मकान को अगर ख़रीद लूं तो……।

ठेकेदार—[बात काट कर] आप ख़ुद ?

मुंशी जी—जी हाँ मेरा ख़ुद इरादा है कि इस मकान को ले ही लूँ, पड़ा रहेगा।

ठेकेदार—मगर क्या वाक़ई आप—यानी कि सचमुच आपका यह इरादा हो रहा है ?

मुंशी जी—जी हां वाक़ई मैं सोच रहा हूं कि नक़द रुपया रखने से जायदाद का रखना हर हाल में बेहतर है।

ठेकेदार—है तो ज़रूर बेहतर मगर......।

मुंशीजी—हां हां बताइये क्या इसमें कोई नुक़सान भी है ? आप मुझे साफ़-साफ़ बता दीजिए।

ठेकेदार—जी, नुक़सान की बात नहीं। सवाल यह है कि ...।

मुंशी जी—[बात काटकर] हां-हां फ़रमाइये।

सलीम—ठेकेदार साहब को ग़ालिबन कुछ ताज्जुब है।

ठेकेदार—जी, ताज्जुब की बात ज़रूर है कि यह सवाल एकदम आप के ज़हन में क्योंकर आया।

मुंशी जी—बेशक ताज्जुब होना चाहिए, मगर खैर। अब आप इस सिलसिले में बातचीत कर लीजिए। या यूं कीजिए कि सुबह मेरे पास इस मकान के काग़ज़ात लेकर आजाइये और मामला तै हो जाये।

ठेकेदार—बहुत बेहतर है। तो अब मैं इजाज़त चाहता हूं।

मुंशी जी—भूलियेगा नहीं और बक़िया किराया भी... ।

ठेकेदार—[बात काट कर] खैर किराये की कौन-सी बात है, आदाब अर्ज़ है।

[जाता है।]

बीवी—ऐ मैं कहती हूं कि तुम ग़ज़ब ही तो कर रहे हो। आखिर तुम्हें सूझी क्या है ?

मुंशी जी—क्या मतलब ! क्या ग़ज़ब किया मैंने ?

बीवी—वह ठेकेदार भी कहता होगा कि इनके घर में रुपया भरा पड़ा है और दो-दो महीने का बेकार किराया चढ़ाते हैं।

मुंशी जी—हां हां तो कौन सी बात हुई ? खुदा करे उसका यही

समझना ठीक हो।

बीवी—तो खुदा जब वक़्त दिखाता उसी वक़्त ऐसी बातें करते। तुम तो जैसे बादल देखकर घड़े तोड़ रहे हो।

मुंशी जी—खैर तुम तो कुछ समझो, न सोचो। अगर इसी को यह मालूम हो जाता कि मैं लखपति हूँ तो इस मकान की क़ीमत बढ़ा देता। मुझे मकान की ज़रूरत नहीं है मगर इतने दिन इस मकान में रहे हैं कि कुछ मुहब्बत-सी हो गई है। इसको तुड़वाकर छोटी-सी-कोठी बनवा दूंगा और नाम रखूंगा 'नसीम मंज़िल' नन्हे के नाम पर क्योंकि अब वह दो टके के मुंशी का लड़का नहीं एक लखपति का लड़का होगा और नाम होगा साहबज़ादा नसीम उद्दीन खाँ इब्न खान बहादुर अज़ीम उद्दीन खाँ!

बीवी—लो और सुनो बहादुर भी हो गये।

मुंशी जी—क्यों खान बहादुर होने में क्या हुआ? एक लखपति तो न जाने क्या बन जाता है, तुम देखती तो रहो अभी। अजी यह खान बहादुरी वग़ैरा के खिताब तो मियाँ सलीम तक को चुटकी बजाते-बजाते दिलवा दूंगा तुम समझती क्या हो? अब भी क्या मैं वही मुंशी अज़ीम हूँ? अर्ज़ी नवीस कहीं का? एक वकील का मुहर्रिर? अब तो वकील साहब खुदही मेरे क़ानूनी मुशीरों(परामर्शदाता)में नौकर होंगे और क्या।

बीवी—भई अल्लाह ऐसी बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हैं और जो—

[कुण्डी खड़खड़ाने की आवाज़, तार वाला आवाज़ देता है।]

तार वाला—तार ले जाइये।

मुंशी जी—(गड़बड़ाकर) तार, सुनती हो तार? मियां सलीम तार।

[दौड़ कर बाहर जाता है।]

सलीम—यह तो वाक़ई तार है, तार……यानी……वाक़ई तार।

बीवी—वाह री तेरी शान! तूने दिन पलट दिये।

मुंशी जी—[दौड़ते हुए आते हैं] भई एक रुपया है ? मगर तुम्हारे पास कहाँ, मियाँ सलीम एक रुपया हो तो तार वाले को दे दो।

बीबी—ऐ देखो तो कितना इनाम निकला ? बिसमिल्लाह कहकर खोलना। वाह री तेरी शान !

मुंशी जी—भई तुम्हारे हाथ मुबारक हैं, तुम्हीं खोलो। मेरे हाथ तो इस वक़्त कांप रहे हैं। दस्तख़त करने की जगह लिख गया था 'लखपति' घबराके।

सलीम—क्या कहा 'लखपति' लिख गये थे ? तो भाई साहब, ग़लत ही क्या लिखा था।

मुंशी जी—अरे भई तो इसे खोलो ना जल्दी।

बीबी—ऐ खुद ही क्यों नहीं खोलते ?

मुंशी जी—नहीं, तुम खोलो बिसमिल्लाह करके। मुझे तो इस वक़्त कुछ इख़्तिलाज [हृदय-कम्पन] हो रहा है।

बीबी—लो पढ़ो।

मुन्शीजी—लेना सलीम मियाँ। देखो रक़म कितनी है। किधर गया मेरा चश्मा ?

सलीम—अरे......।

मुंशी जी—क्यों क्या बात है ?

सलीम—महमूद भाई का तार है। कल शाम भाभी जान ने इंतिक़ाल फ़रमाया।

मुंशी जी—[भर्राई हुई आवाज़ में] ग़ौर से पढ़ो सलीम।

बीबी—हाय यह मेरी रज़्ज़ो के मरने का तार है।

[रोती है।]

सलीम—भाभी जान, सब्र कीजिए।

मुंशी जी—लोगो ! मैं अपने दिल को कैसे समझाऊँ ? अरे मुझको पकड़ो।

[गिर पड़ता है।]

सच

[खाने की मेज़ की घण्टी बजती है; रज़िया कहती है।]

रज़िया—शायद चाय लग गई है आपा।

सफ़िया—तुम्हारे दूल्हा भाई भी गुस्लखाने से आ गए?

रज़िया—क्या मालूम, देखिए पूछती हूं। [आवाज़ देती है] ब्वाय! ब्वाय! [दरवाज़ा खुलता है, ब्वाय के क़दमों की चाप]

ब्वाय—सरकार!

सफ़िया—साहब, गुस्लखाने से आ गये?

ब्वाय—जी नहीं, साहब आराम कर रहे हैं। बिस्तर की चाय भी आज नहीं हुई।

रज़िया—उफ़्फ़ोह साढ़े आठ बजे हैं अब तो।

सफ़िया—रात को किस वक़्त आये थे साहब?

ब्वाय—सरकार दो बज चुके थे, शायद तीन नहीं बजे थे।

सफ़िया—देखा तुमने रज़िया, बारह बजे तक मैं खुद जागती रही हूं।

रज़िया—मगर कल तो कह गए थे कि आज से जल्दी आ जाया करूंगा।

सफ़िया—आये न हो कहीं। हमेशा आधी-आधी रात को आये और हमेशा कोई-न-कोई नया बहाना साथ लाये। कल देखो

तुम्हारे सामने सच बोलने का वादा किया था मगर आज ऐसा सफ़ेद झूठ बोलेंगे कि जिसमें सच का धब्बा भी न हो।

रज़िया—मैं जगाऊँ जाकर ?

सफ़िया—नहीं मैं खुद जाती हूँ। [एकाध क़दम चलकर] आओ तुम भी आओ।

[दोनों जाती हैं, इकराम बेख़बर सो रहे थे। सफ़िया आवाज़ देती है।]

सफ़िया—यह आखिर आज कब तक सोया जायेगा ? या अल्लाह घोड़े बेचकर सोये हैं। मैंने कहा सुनते हैं आप, नौ बजने को हैं ?

इकराम—ऊँ···ऊँह अख खाह······क्या है भई ? [अँगड़ाई लेता है।]

सफ़िया—क्या आज दिन भर सुलाई होगी ? नौ बज रहे हैं।

इकराम—क्या कहा नौ ? आखिर मुझे उठा क्यों न दिया पहले से लाहौल वला क़ूवत ! मगर खैर आज छुट्टी भी तो है दफ़्तर में। [अँगड़ाई] चाय पी चुके आप लोग ?

रज़िया—बग़ैर आपके चाय कैसे पी लेते ? आप ही बग़ैर हम लोगों के रोज़-रोज़ दावतें उड़ाते फिरते हैं।

सफ़िया—और यह रात को किस वक्त वापसी हुई थी आपकी ?

इकराम—कब रात को ? शायद कोई······वह मैंने कहा कि चाय की मेज़ पर बातें होंगी। चलो वहीं चलो।

रज़िया—तो आइये न चाय तो कब की तैयार है।

सफ़िया—क्या आज ग़ुस्ल भी न होगा ?

इकराम—सब चाय के बाद देखा जायेगा। छुट्टी के दिन तो आदमी आज़ादी से रह सके। हो जाएगा ग़ुस्ल भी।

सफ़िया—अरे तो कम-से-कम मुँह तो धो ही लीजिए।

रज़िया—तो क्या अब मुँह भी न धोयेंगे ?

इकराम—आप लोग तशरीफ़ ले चलें, मैं बस एक छींटा डालता हुआ हाजिर हुआ अभी चुटकी बजाते।

[इकराम सीटी बजाता चला जाता है।]

रज़िया—देखा तुमने वापसी के ज़िक्र को क्या साफ़ टाल गये। मगर मैं बग़ैर पूछे न मानूंगी।

रज़िया—तो आप पूछकर ही क्या लीजिएगा। वह कोई बात बना देंगे।

सफ़िया—दिल्लगी बाज़ी है बात बना देना? कल सच बोलने का वादा किया है?

रज़िया—आप की भी क्या बातें हैं आपा? ऐसे-ऐसे वादे मर्द हमेशा किया करते हैं।

[चाय की प्यालियों की खड़खड़। क़दमों की चाप]

इकराम—हां साहब। [बैठ जाता है] सुनिये जनाब, मक्खन आज में खुद लगाऊंगा। हमेशा इस सिलसिले में बेईमानी होती है मेरे साथ। और वो जो बड़े-बड़े अण्डे अलग-अलग नजर आ रहे हैं सबसे वो हैं मेरे हिस्से के। उन्हें इधर उठा दीजिये।

सफ़िया—यह लीजिये। और यह लीजिये।

इकराम—एं यह क्या है। हलवा? क्या खूब! क्या खूब!

भई सफ़िया तुम सलामत रहो हजार बरस।

दूसरा मिसरा अर्ज़ है कि—

यह तश्तरी उसी तरफ़ रहने दीजिये।

सफ़िया—लीजिए यह तश्तरी भी लीजिए। मगर अब इस बे तकल्लुफ़ी और शाइरी में असल बात न टालिये।

इकराम—कौन सी बात? यह छुरी देना रज़िया।

सफ़िया—मैंने आपसे पूछा था कि कल रात को आप किस वक्त आये थे।

इकराम—वह बात? हां वह मगर ज़रा देखिए, ज़रा इस छुरी को

ज़ंग लगने के आसार हो गये हैं।

सफ़िया—साफ़ हो जाएगी। आप यह छुरी ले लीजिये। हां तो आप कल रात किस वक्त आये थे?

इकराम—कल रात? और जो मैं छुरी का तज़करा कर रहा हूँ वह गोया कोई बात नहीं। आप इन बातों को मामूली समझकर न टालिये वर्ना ये नौकर सबको ज़ंगआलूद कर देंगे।

सफ़िया—मैं नौकरों को समझा दूंगी। मगर आप मेरी बात का जवाब दीजिए कल रात को किस वक्त आये थे।

इकराम—कौन मैं? आया हूँगा कोई ग्यारह या शायद सवा ग्यारह बजे थे जब मैं इस सड़क की मोड़ पर था। तो खैर वो मैं यह कह रहा था कि छुरी की सफ़ाई ···।

सफ़िया—[बात काटकर] सवा ग्यारह बजे आये थे आप?

इकराम—ऊँ! अरे साहब मैंने घड़ी तो देखी नहीं थी मगर हां यह कोई साढ़े ग्यारह का अमल होगा।

रज़िया—[हँसकर] खूब अच्छी तरह सोचकर याद कर लीजिये, दूल्हा भाई।

सफ़िया—और यह भी याद कर लीजिये कि कल आपने सच बोलने और कभी झूठ न बोलने का वादा किया है।

इकराम—ऊँ? हूं···हूं। मैं वाक़ई उस वादे को भूल गया था। [बनावटी संजीदगी के साथ] माफ़ कीजियेगा, मैं कोई ढाई बजे आया था और जब बिस्तर पर जा चुका हूँ तो क्लाक ने तीन बजाये थे।

सफ़िया—आखिर इतनी-सी बात बता देने में आपका क्या हर्ज था जो बेकार झूठ बोल रहे थे। यह लीजिये शकर, क्या आज फीकी चाय पीने का इरादा था?

इकराम—बातों में खयाल न रहा और कुछ नींद का खुमार भी है।

रज़िया—तो क्या दूल्हा भाई ढाई बजे तक क्लब में ही रहे आप ?

इकराम—नहीं क्लब तो कोई डेढ़-दो महीने से मैं जाता ही नहीं।

सफ़िया—आप क्लब नहीं जाते ? रोज़ तो आप यही कहते हैं कि क्लब जाता है और क्लब से आ रहा हूं।

इकराम—बेशक मैं कहता था, मगर अब तो सच बोलने का वायदा है ना ?

रज़िया—अच्छा तो फिर आप क्लब का नाम लेकर रोज़ कहाँ जाते हैं ?

इकराम—मैं इस सिसिले में झूठ बोलना तो नहीं चाहता मगर मेरे ख़याल में आप लोग यह सवाल न करें तो अच्छा है।

सफ़िया—आखिर यह सवाल क्यों न किया जाये ? मैं तो ज़रूर पूछूंगी और आपको सच-सच बताना पड़ेगा।

इकराम—अच्छा अगर यही ज़िद है तो कम-से-कम यही इजाज़त दे दीजिये कि मैं सिर्फ़ इस सिलसिले में झूठ बोल लूं।

सफ़िया—आखिर क्यों झूठ बोलिए ? बहादुरी के साथ सच बोलने से आप क्यों डरते हैं ?

इकराम—देखिये मैं आपसे फिर कहता हूं कि न पूछिये। मैं आपकी आंखों में आंसू, आपके लबों पर आहें और आपके कलेजे में टीस देखना नहीं चाहता और न अपने और आपके ताल्लुक़ात को हमेशा के लिए नागवार बनाना चाहता हूँ।

रज़िया—न पूछिये आपा, आखिर क्या फ़ायदा ? जाते होंगे कहीं आपकी बला से।

सफ़िया—वाह यह भी तुमने एक ही कही ! बल्कि मैं तो खुश हूंगी कि हमेशा जो झूठ मुझसे बोला गया है उसकी असलियत यह है। कम-से-कम अब मैं धोखे में तो न रहूंगी।

इकराम—मगर बावजूद इसके मुझे यक़ीन है कि आप औरत हैं।

रज़िया—[शरारत से] क्या सचमुच आपको यक़ीन है कि आपा औरत

हैं ? [हँसती है ।]

इकराम—जी हाँ, यह औरत हैं और मैं जानता हूँ कि एक औरत बहुत सी बातें जान-बूझकर झूठ ही सुनना चाहती है अगर इन बातों के बारे में मर्द सच बोलना शुरू कर दें तो औरत उनको कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती ?

सफ़िया—मालूम नहीं आप किस क़िस्म की औरतों के मुताल्लिक़ कह रहे हैं ? मैं तो साफ़ और सच्ची बात को हमेशा पसंद करती हूँ और मुझे यक़ीन है कि आप अगर मुझसे सच बोलते रहे तो मैं ज्यादा खुश और मुतमइन रह सकूंगी ।

इकराम—अगर आपका यही खयाल है तो सुनिये । मैं डेढ़-दो महीने से क्लब नहीं जा रहा हूँ । क्या आपको वह तारीख याद है जब आपकी सहेली नाहीद आपसे मिलने आई थी ?

रज़िया—नाहीद ?

सफ़िया—नाहीद को आये हुए दो महीने के क़रीब हुए ।

इकराम—[एक-एक लफ़्ज़ तोल-तोलकर] जी नहीं, वह एक महीना बीस दिन हुए जब आखिरी मरतबा आपके यहाँ आई थीं । उसके बाद से मैं शायद दो बार क्लब जा सका वर्ना ज्यादा-तर वक़्त उन्हीं के यहाँ गुज़रता रहा । यहाँ तक कि मैं नाहीद के यहाँ से ज्यादा क्लब क्या किसी जगह को भी अपने लिए दिलचस्प नहीं पाता ।

रज़िया—मगर दूल्हा भाई आप तो नाहीद को देखकर हफ़्तों उसकी एक-एक बात का मज़ाक़ उड़ाया करते थे कि उसकी नाक ऐसी है, और आँखें ऐसी हैं और बात करने में मुँह यों बनता है ?

इकराम—चूँकि अब मैं सच बोलने का वादा कर चुका हूँ और उस पर क़ायम भी रहना चाहता हूँ लिहाज़ा मुझे इक़रार है कि मैंने यह झूठ सिर्फ़ इसलिए बोला था कि तुम्हारी आपा

को मेरी निगाहों की चोरी का अन्दाज़ा न हो सके और वह मेरे दिल की कैफ़ियत मेरे चेहरे से न पढ़ सके।

सफ़िया—वर्ना आपको नाहीद से दिलचस्पी उसी वक्त से है जब आप उसकी आंखों को मरी हुई बकरी की आँखें कहा करते थे। बात करते हैं। उसकी तरफ़ देख-देखकर मुंह चिढ़ाया करते थे और नाक पर पहिया फिरा हुआ कहते थे।

इकराम—देखो सफ़िया, आख़िर तुम बुरा मान गईं ना? मैं तुमसे कह रहा था कि इस सिलसिले में सच्ची बातें मुझसे न पूछो।

सफ़िया—अब आपको वहम भी हो रहा है। मैं तो बिल्कुल बुरा नहीं मानी अलबत्ता आपकी बातें आपको याद दिला रही हूँ कि आप इस तरह से उसका मज़ाक़ मेरे सामने उड़ाया करते थे।

रज़िया—मगर अल्लाह रे आपकी चालाकी दूल्हा भाई! इस क़दर कामयाब एक्टिंग करते थे।

सफ़िया—बल्कि मुझको बुरा मालूम होता था कि यह नाहीद को आख़िर इस क़दर क्यों बनाते हैं हालांकि जिन-जिन बातों को यह कहते थे वही सब उनको पसन्द थीं।

इकराम—मेरा इस वक्त बेइख़्तियार जी चाहता है कि झूठ बोलकर इस क़िस्से को यहीं पर खत्म कर दूं।

सफ़िया—मगर देखिये आप सच बोलने का वादा कर चुके हैं और आपको अपने क़ौल पर क़ायम रहना चाहिए।

इकराम—मैं फिर तुमसे कहता हूं। लीजिये शेर हो गया खुद-ब-खुद—सच बोलने में वल्लाह बड़ी आफ़त है।
सच कहते हैं हमको सच न पूछो हम से॥

सफ़िया—खैर अपनी शाइरी तो आप भाड़ में झोंकिये। मगर आफ़त की इसमें कौन सी बात है। बात जो पहले थी वही अब भी है, फ़र्क़ बस यह हुआ है कि पहले आप झूठ बोलकर चोरी

कर रहे थे और अब सच बोलकर अपने जुर्म का इक़रार कर रहे हैं।

रज़िया—तो क्या सचमुच आपको नाहीद की वही बातें पसन्द थीं जिनका आप मज़ाक़ उड़ाते थे ?

इकराम—मुझे सच्चाई के साथ इक़रार करते हुए कुछ कँपकँपी-सी महसूस हो रही है। मगर मैं अपने वादे पर क़ायम हूँ। [रोमानी अंदाज़ में] मैंने नाहीद की आँखों में जिनको मैं मरी हुई बकरी की आँखें कहा करता था, एक अजीब ज़िन्दगी और कशिश देखी। फिर उस कशिश ने मुझको अपनी तरफ़ खींचकर उन आँखों की तमाम शराब पिला दी। मेरा शुरू-शुरू में यह दिल चाहता था कि काश मेरी सफ़िया की भी आंखें ऐसी ही होतीं। मगर आखिर में यह ख़याल भी बाक़ी न रहा अलबत्ता सफ़िया का डर इतना ज़रूर था कि मैं नाहीद की आँखों के मुताल्लिक़ झूठ बोल जाता था और जो कुछ मैं सफ़िया की आँखों को समझता था वह नाहीद का नाम लेकर कह जाता था।

सफ़िया—यानी मरी हुई बकरी के दीदे असल में मेरे हैं। यही मतलब है न आपका ?

इकराम—मैं इसीलिए सच बोलना नहीं चाहता था, देखिये आप बुरा मान रही हैं।

सफ़िया—नहीं इसमें बुरा मानने की कौनसी बात है ? यह तो अपनी-अपनी क़िस्मत है। नाहीद को क़ुदरत ने नर्गिसी आँखें दी हैं और मेरे हिस्से में मरी हुई बकरी की आँखें आईं।

रजिया—[बुरा मानकर] कहीं भी नहीं मुझे तो नाहीद की आँखों को देखकर कभी यह खयाल पैदा न हुआ कि वह नर्गिसी हैं और अगर आँखें अच्छी भी हैं तो क्या डील-डौल तो देखिये जैसे हथनी का हथनी और····।

इकराम—सुनो सुनो रज़िया। देखो अगर सच्ची बात पर इस तरह गुस्सा करोगी तो आख़िर मैं क्योंकर सच बोल सकूंगा? क्या तुम ईमान से कह सकती हो कि तुमने नाहीद की वे निगाहें देखी हैं जो मेरी तरफ उठती थीं?

सफ़िया—उसे क्या ग़रज़ थी कि वह बेगम साहबा की एक-एक नजर देखती रहती।

इकराम—उफ़! वही निगाहें तो तमाम मैख़ानों का निचोड़ होती थीं। उन्हीं निगाहों में तो जन्नत के ख्वाब जागते हुए नज़र आते थे।

रज़िया—[जलकर] और नाक को भी कह दीजिये कि उसी का नाम सांची स्तूप था।

इकराम—सांची स्तूप की अच्छी कही! [ख़फ़ीफ़ सी हंसी, फिर यकायक संजीदा होकर] मगर शायद तुमने उस बज़ाहिर फैली हुई नाक पर पसीने के वो कतरे नहीं देखे जो शरमाये जाने के बाद पैदा होते थे। उसकी नाक फूली हुई ज़रूर है मगर देखो ईमानदारी से कहना कि सफ़िया से ज्यादा चपटी नाक है उसकी?

रज़िया—आपा की नाक ख़ुदा न करे उसकी जैसी हो। अच्छी-ख़ासी खड़ी-खड़ी नाक है।

सफिया—मगर मैं आपसे यह पूछ सकती हूं कि मेरी मुर्दा आंखें और यह मेरी चपटी नाक शादी से पहले भी आपकी नज़र से गुज़र चुकी थी।

इकराम—आप सच कहती हैं। मगर चूंकि इसके जवाब में मुझे भी बोलना है लिहाज़ा मैं यह कहने पर मजबूर हूं कि जिस वक्त मैंने आपको शादी से पहले देखा था उस वक्त आपकी सहेली को नहीं देखा था।

सफिया—अच्छा यह बताइये कि नाहीद को देख चुकने के बाद भी

आपने हमेशा [रुक-रुककर] हमेशा आपने··· यानी मेरे ही मुतालिक़···

इकराम—आप ग़ालिबन यह कहना चाहती हैं कि नाहीद को देख चुकने के बाद भी मैंने आपसे हमेशा यह क्यों कहा कि तुम्हारी आंखों में जादू है, तुम्हारे हुस्न ने तमाम दुनिया के हुस्न को मेरे लिए मांद कर रखा है। यही न ?

सफ़िया—ख़ैर मैं तो यह नहीं कह रही थी। मगर हां अच्छा यही सही तो आप यह क्यों कहा करते थे ?

इकराम—सफ़िया यह मेरा झूठ था, सफेद झूठ। वर्ना वाक़िया यह है कि मुझे नाहीद की आंखों ने कहीं का न रखा था। उसके हुस्न ने बाक़ी तमाम दुनिया को मेरे लिए तारीक कर दिया था ···· मगर ···· यह क्या तुम चाय क्यों नहीं पी रही हो ?··· · यह थोड़ा-सा हलवा और यह मक्खन तो बिस्किट पर लगाओ।

सफ़िया—नहीं, इस वक़्त सिर्फ चाय पियूंगी।

इकराम—जी, बजा इरशाद। आख़िर यह हुआ मेरे सच बोलने का नतीजा ? मैं बस इसीलिए कह रहा था कि सच न बुलवाइये मुझसे। मगर एक तो हैं कि मैं खुद सच बोलकर कुछ हल्का-सा हो गया हूँ। हलवे की आधी प्लेट साफ करदी और मक्खन क्या और मक्खन नहीं है ? और भई जेली क्या हुई ?

रज़िया—ब्वाय, ब्वाय ! [क़दमों की चाप] देखो मक्खन, लड्डू और जेली की बोतल निकालो।

इकराम—मैं दर असल यह चाहता हूँ कि इस सच या झूठ का क़िस्सा ही न रहे और यह बात टल ही जाये तो अच्छा है।

सफ़िया—अब बात अगर टल भी गई तो क्या होगा क़िस्मत का लिखा तो मेरे सामने आ ही चुका है। [आह भरकर]

जिस प' तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे।

इकराम—अच्छा अब तो आपने भी शाइरी करदी, क्या खूब। मगर यह तो फ़रमाइये क़िस्मत का लिखा क्या सामने आया? यही ना कि मैं सच बोलने पर मजबूर किया गया और मैंने सच बोलना शुरू कर दिया? अगर मैं खुदसे सच बोलता तो बेशक गुनाहगार था मगर आप ही ने इतना बड़ा सच बुलवाया और अब उसका इतना बड़ा असर ले रही हैं कि साहब चाय तक नहीं पी जाती नाश्ते का तो सवाल ही क्या।

सफ़िया—नहीं, मैंने असर-वसर तो कुछ भी नहीं लिया, मगर.......

इकराम—[बात काटकर] आपने असर नहीं लिया यह आप सच कह रही हैं, मगर हाँ यह भी ठीक है कि घर में बस एक आदमी का सच बोलना काफ़ी है। अरे साहब हटाइये इस क़िस्से को। मैं नाहीद को क्या जानूँ अगर आप पर ऐसा ही असर हो रहा है। कल एक जल्से में रात को दो बजे तक तक़रीरें सुनता रहा। बस अब तो आपको इत्मीनान हुआ?

रज़िया—अब मालूम नहीं कि यह सच है या वह सच था।

सफ़िया—जी नहीं अब गोया मुझको बनाया जा रहा है।

इकराम—भई जब सच बोलने से आप पर इस क़द्र बुरा असर हो सकता है तो सिवाय झूठ बोलने के और सूरत ही क्या हो सकती है। दरअसल मैं तो खुद इस नाहीद वाले क़िस्से को इस हद तक बढ़ाना नहीं चाहता था, मगर यह तो वह आग है।

कि लगाये न लगे और बुझाये न बने

रज़िया—अच्छा यह तो बताइये कि नाहीद को भी इसकी खबर है कि आपके ख़यालात उसके मुताल्लिक़ क्या हैं?

इकराम—[क़हक़हा लगाकर] भई यह खूब सवाल किया! [संजीदा होकर] अगर उन्हीं को ख़बर न होती तो यह नौबत क्यों आती? मुझको दरअसल अब अपने जज़्बात से ज्यादा उसके

जज़्बात का खयाल है इसलिए कि वह यक़ीनन बेक़ुसूर है।

सफ़िया—अच्छा तो यह कहिये कि उन बेगम साहबा के भी कुछ जज़्बात हैं। हूँ····· हूँ।

रज़िया—मगर मुझे नाहीद से ऐसी उम्मीद न थी।

इकराम—क्या उम्मीद न थी? उस ग़रीब पर कोई इलजाम न लगाओ। सच पूछो तो उसने हमेशा मुझसे यही कहा कि इकराम साहब आप मेरी सब से प्यारी सहेली सफ़िया की अमानत हैं।

सफ़िया—मक्कारा, चुड़ैल !

रज़िया—मैं तो हमेशा से उसका दीदा हवाई देखती थी। आपा ही थीं कि [मुंह चिढ़ाकर] 'मेरी नाहीद' और 'मेरी गुइयाँ' कह कह कर बिछी जाती थीं। डाइन कहीं की !

इकराम—बस यही तो तुम लोगों का औरतपन है। मैं सच कहता हूँ कि उस ग़रीब ने हमेशा निहायत मुहब्बत के साथ सफ़िया का ज़िक्र किया। क़ुसूरवार तो दरअसल मैं हूँ कि मैं उस बेचारी को मुद्दतों परस्तारियाँ करने के बाद इस हद तक ला सका कि आखिर उसने भी कह दिया कि बग़ैर तुम्हारे मेरी ज़िन्दगी मुश्किल है।

सफ़िया—तो आखिर आप इनकी ज़िन्दगी को मुश्किल क्यों बनाइये ?

इकराम—वह एक अजीब औरत है। शुरू-शुरू में मुझसे जिस क़दर व॰ खिची है उसको मेरा ही दिल खूब जानता है मगर दीवानावार मुहब्बत के बावजूद उसको सफ़िया का ख़याल है कि किसी तरह नहीं छोड़ता। कल ही कह रही थी कि दुनिया में किसी की मुजरिम नहीं, अलबत्ता सफ़िया की गुनाहगार ज़रूर हूँ।

सफ़िया—मुझे तो सचमुच ताज्जुब है कि मैंने हमेशा उसके मुताल्लिक़ ऐसा धोखा खाया। उसके घर वाले सब बहुत आज़ाद ख़याल

हैं मगर खुद वह तो बहुत ही शर्मीली और छुई-मुई क़िस्म की लड़की थी।

इकराम—जी हां यह अदा तो अब तक मौजूद है यानी यूं तो दिन-भर मेरे इंतिजार की घड़ियां गिनी जाती हैं, दिन भी पहाड़ की तरह काटा जाता है, दफ़्तर में आदमी-पर-आदमी ख़त-पर-ख़त लेकर आता मगर मैं जब शाम को जाता हूं तो वही निगाहों का उठ-उठ कर झुकना, वही आंचल के साथ रस्सा कशी और वही—

वां एक ख़ामुशी तिरी सबके जवाब में।

रज़िया—जी और क्या यह शर्म-ओ-हया तो है कि ग़ैर मर्द से उसने इस तरह कहा।

इकराम—भई उसके मुताल्लिक़ अपनी राय इतनी ख़राब न करो। क़ुसूर तो दरअसल मेरा है। मेरे और उसके जो एहद-ओ-पैमान हुए और उसने जो मुहब्बत का इक़रार किया उसकी ज़िम्मेदारी तो मुझ पर है। उस बेचारी की क्या ख़ता ?

सफ़िया—नहीं नहीं, उसकी ख़ता क्यों हुई। ख़ता तो मेरी है, क़ुसूर तो मेरे मुक़द्दर का है। यह सब मेरी क़िस्मत का लिखा है जो इस तरह [रोनी-सी आवाज़ में] पूरा हुआ। मुझे किसी से शिकायत नहीं है।

इकराम—हायँ, हायँ, अरे यह क्या ? भई यह क्या ?

रजिया—दूल्हा भाई सच पूछिये तो आपा ने इतना ही ज़ब्त किया तो बहुत किया। आपने यह कोई मामूली चर्का नहीं लगाया है [रोनी आवाज़ के साथ] औरत तो बस यही बर्दाश्त नहीं कर सकती।

[मोटर की आवाज आती है।]

इकराम—शायद कोई आया है सफ़िया। यह क्या वाहियात है रजिया

अपने को सँभालो ।

[क़दमों की चाप]

ब्वाय—सरकार असलम साहब आये हैं।

इकराम—[घबराकर] कौन ? एं—हूँ—वह—हाँ अच्छा-अच्छा बुला लो उनको । [क़दमों की चाप] देखो सफ़िया खुदा के लिए इस क़िस्से को खत्म करदो वर्ना असलम क्या कहेगा । [क़दमों की चाप]

असलम—आदाब अर्ज है भाभी । ओहो रजिया साहब बहादुर भी मौजूद हैं । और यह हजरत आप ग़ायब कहाँ हो गये थे एकदम?

इकराम—[घबराकर] कौन मैं ?······मैं ··· मैं तो खैर ···खैर अच्छा यह बताओ चाय पियोगे ? भई ···· वह ·· यह कि ···यानी····· आज बहुत सी चाय और नाश्ता बचा है । इन दोनों बहनों ने बायकॉट कर रखा है । लो [प्याली बढ़ाता है] ।

असलम—ना भाई । अभी सरकार के साथ नाश्ता करके आ रहा हूँ । जानते हो अपनी क़िस्म का पहला नाश्ता था जो आज हुआ है ? हाँ वह तो सुना है कि भाभी की सहेली भी हैं ।

सफ़िया—कौन मेरी सहेली हैं ?

इकराम—खैर खैर होगा भई लो तुम सिगरेट पियो । यह सिगरेट, हाँ यह लो ।

रजिया—किस सहेली का जिक्र कर रहे थे आप असलम साहब ?

इकराम—उफ्फ़ोह ! अरे मियाँ ऐसे हवास-बाख्ता न बनो । [घबराई हुई हँसी]

सफ़िया—कौन सी सहेली को कह रहे थे आप ?

इकराम—कैसी है सिगरेट ?

असलम—जी भाभी मैं नाहीद का जिक्र कर रहा था ।

सफ़िया—वह ? वह मेरी सहेली-वहेली क्यों होने लगी ?

इकराम—अरे भई हाँ असलम, वह मैंने कहा। अरे भई वह मैं यह कहना चाहता था······लाहौल वला-क़ूवत ! न जाने क्या कहना चाहता था। मतलब यह है कि अच्छी तरह बैठो।

असलम—अल्लाह खैर करे आज इतना अखलाक़ क्यों सर्फ हो रहा है मेरे साथ ? हाँ तो भाभी मैंने कहा······।

इकराम [बात काट कर] लो दूसरी सिगरेट लो यह टेढ़ी जली है। अजीब बदतमीज सिगरेट नो मश्क़ हो।

असलम—नहीं जी ठीक है सब। यह आखिर आज आप इतने मुह-ज़ज़ब और बाअखलाक़ क्योंकर बन गये हैं।

इकराम—भई मेरे खयाल में ··· खैर ··· खैर······तो मतलब यह है कि चलो ज़रा महमूद की तो खबर लाएँ कि वह कल··· कल नहीं बल्कि बल्कि ······ बहुत दिनों से ग़ायब है बहुत दिनों से······बहुत······।

असलम—भाई साफ़ बात यह है कि मैं इस वक़्त न जा सकूँगा इस लिए कि मुझे खाने के ठीक वक़्त पर पहुँचना है वर्ना सरकार इंतिज़ार करेंगी।

रज़िया—[हैरत से] सरकार इंतिज़ार करेंगी ? यह कौन सी सरकार है ?

सफ़िया—आजकल सरकारों की क्या कमी है ? होंगी कोई।

इकराम—तो हाँ मैं कह रहा था। भई वह कुछ भली-सी बात थी देखो।

असलम—आप कुछ बकवास कर रहे होंगे। मगर भाभी और रज़िया को तुमने खबर तक न दी और कल मुझसे कह दिया कि उनकी तबियत ठीक नहीं है।

इकराम—लाहौल वला-क़ूवत ! सब खत्म, सारा किस्सा खत्म। [हँसता है।] भई बात यह थी कि तुमने इतना कम वक़्त का नोटिस दिया था कि यह प्रेज़ेण्ट वग़ैरा का इंतिज़ाम न

कर सकतीं।

सफ़िया—मुझे ये मुअम्मों की बातें अच्छी नहीं लगतीं। आप बताइए असलम साहब की किस बात की इत्तला थी जो मुझको न दी गई।

इकराम—अरे साहब अब भांडा फूटा ही है तो सुन लीजिए। कल इन हज़रत की शादी आपकी सहेली नाहीद के साथ हो गई।

रज़िया और सफ़िया—[एक आवाज़ में] नाहीद के साथ ?

इकराम—जी हाँ, नाहीद के साथ, नाहीद के साथ, नाहीद के साथ।

असलम—इन्होंने तो मुझको बताया था कि आप और उनके ताल्लुक़ात बहुत ज्यादा हैं मगर आप शायद नाराज़ हैं उनसे कुछ। क्यों भाभी ?

इकराम—अरे भई ये नाराज़-वाराज़ कुछ नहीं हैं। मैंने ज़रा-सा चुटकुला छोड़ा था अफ़सोस कि वह तुम्हारी वजह से बहुत जल्द ख़त्म हो गया।

सफ़िया—मगर आप बड़े झूठे हैं।

रज़िया—उफ़्फ़ोह ! ऐसा झूठ ! तौबा तौबा !

सफ़िया—अल्लाह बचाये आपके झूठ से।

[इकराम बराबर हँस रहा है।]

इकराम—मैंने झूठ तो ज़रूर बोला मगर शुक्र अदा करो कि यह सच नहीं था। [हँसता है।]

असलम—भई यह क़िस्सा क्या है अजीब मुअम्मा है।

इकराम—[हँसते हुए] अरे बतायेंगे तुमको भी। पहले इन दोनों को चाय तो पिलाओ। [आवाज़ देता हैं।] ब्वाय ! ब्वाय ! देखो गरम चाय लाओ। [फिर क़हक़हा बुलंद करता है।] लाहौल वला क़ूवत !

सफ़िया—क्या अच्छे लग रहे हैं हँसते हुए !

इकराम—लो फिर बोलूँ मैं सच ? क्या कहा था तुम दोनों ने ?

हथनी, सांची स्तूप और······?

रज़िया—[चीख़ कर दौड़ते हुए] देखिए ! देखिये ख़बरदार !

सफ़िया—बन्द कर दे इनका मुँह—!

[इकराम क़हक़हे बुलन्द कर रहा है।]

लाडला बेटा था इक माँ-बाप का

[एक बड़े मियां बड़बड़ाते हुए माइक्रोफ़ोन के क़रीब आते हैं।]

दादा मियां—नातिक़ा (वाक् शक्ति) बन्द है साहब। चीज़ रक्खी और ग़ायब, चीज़ रखी गोया और बस फिर क्या मजाल कि पता चल जाये। (आवाज़ देकर) अरे ईदू! घसीटे! सबका इंतिकाल हो गया? [और ज़ोर से] ओ ईदू के बच्चे!

ईदू—[दूर से] आ रहा हूँ सरकार, अभी आया।

दादा मियां—सरकार का बच्चा! इस घर का बाबा आदम ही निराला है। नौकर मिले हैं एक-से-एक नमक हराम।

ईदू—[क़रीब आकर] सरकार ने बुलाया था?

दादा मियां—जी हां गुस्ताख़ी तो हुई थी, माफ़ी चाहता हूँ। गधा कहीं का। यानी बल्कि नामाक़ूल! घण्टे भर में हुज़ूर तशरीफ़ लाये हैं और फ़रमाते हैं। [नक़ल उतार कर] सरकार ने बुलाया था। चल उधर देख कहां है मेरा चश्मा।

ईदू—चश्मा?

दादा मियां—हां चश्मा, चश्मा, चश्मा यानी ऐनक। वह आंख पर लगाने वाली दो शीशे की चीज़ समझा। अब मैं उठूं डण्डा लेकर।

ईदू—समझ तो गया सरकार, मगर वह कहां रखा था ?

दादा मियां—लीजिए अब इन बरखुरदार को यह बताया जाये कि कहां रखा था। अबे अक़्ल के नीलम करने वाले, अगर मुझे ही मालूम होता तो तुझ से क्यों कहता ? ऊँ ? यानी तुझसे क्यों कहता मैं ?

ईदू—मैं अभी देखता हूँ। [ईदू कुछ चीजें उलट-पुलट कर देखता है।]

दादा मियां—कहां देख रहा है, क़लमदान के अंदर ? शायद दवात में डूब गया हो ! ओह, भई सख्त बेवकूफ़ है। खूंटियों पर क्यों देख रहा है कि मैंने टांग दिया होगा कहीं ? लीजिए चारपाई के नीचे झांक रहे हैं आप ! अबे चश्मा खोया है कुत्ता नहीं। अंय यह हुक़्क़ा तूने क्यों हटाया चश्मा ढूंढ़ने के लिए ? तू आख़िर रहने वाला कहां का है ?

ईदू—अच्छा सरकार मैं अभी लाया ढूंढकर। [भागता है।]

दादा मियां—[जल्दी-जल्दी] अरे सुन तो सही। यह तू चला किधर ? अजीब जानवर है ! चश्मा खोया यहां है और वह न जाने कहां ढूंढने गया। हाय, हाय ! अक़्ल तो आसपास है ही नहीं। वह समझा कि शायद चश्मा कहीं बाहर खेलने गया है। [दरवाजे पर कोई दस्तक देता है] कौन साहब हैं ?

हकीम साहब—शेख साहब तशरीफ़ रखते हैं ? मैं हूं हकीम इकराम।

दादा मियां—अख्वाह हकीम साहब हैं। अरे भई तशरीफ़ लाइये ना। इस वक़्त बिल्कुल आवाज़ न पहचान सका। चश्मे के बग़ैर ······मगर······हां······हूं··· हूं [हकीम साहब आ जाते हैं] तशरीफ़ रखिये बन्दा परवर, आज कहां रास्ता भूल गए ?

हकीम साहब—अर्से से मुलाक़ात न हुई थी। मैंने कहा आज खुद ही चलूं। [ईदू भागता हुआ आता है और पीछे-पीछे एक

छः सात साल का बच्चा रोता हुआ आता है।]

दादा मियां—अरे भई यह क्या आफ़त है ? यह क्या क़िस्सा है ? ओ ईदू के बच्चे यह नवाबू क्यों रो रहा है ?

ईदू—यह देखिए सरकार चश्मा ! अपने कुत्ते के लगा रहे थे। मैंने मांगा तो मुझको जूता घसीट कर मारा।

दादा मियां—और तेरे घाव लग गया होगा ! इतने से बच्चे के फूल ऐसे जूते से ? खबरदार ! जो आइन्दा कभी शिकायत की। और तूने आखिर छीना क्यों चश्मा ?

बच्चा—[रोते हुए] मेरे हाथ से छीन लिया इसने चश्मा। इसकी जान ले लूंगा। [रोता है।]

दादा मियां—[चुमकार कर] बुरा हुआ, बुरा हुआ। जो मेरे नवाबू को मारे उसका घर धूप में छांह। ऊपर से मुसम्मा बरसाऊं। आय, आय ! हिच्छी आ गई और बेटा तुमने हकीम दादा को आदाब नहीं किया ? अच्छा इनको मुंह तो चिढ़ा दो ?

बच्चा—[मुंह चिढ़ा कर] भी, भी, भी।

दादा मियां—[हंसकर] मुलाहिजा फ़रमाई आपने यह हरकत कि मुंह चिढ़ाकर खुद आंखें बन्द कर लेता है ताकि दूसरा मुंह चिढ़ाये तो आप न देखें। [पोते से] और बेटा, हकीम दादा को चोंच तो दिखाओ। [क़हक़हा लगाकर] यह······ यह ···· यह बाक़ायदा सारस की चोंच बनाता है। बिल्कुल अपने बाबा के क़दम-बक़दम चल रहा है। वह भी बड़ा ही शरीर था।

हकीम साहब—[खिसियानी हंसी हंसकर] क्या कर रहे हैं अब मियां अच्छन ?

दादा मियां—फ़िलहाल तो घर ही पर हैं। एक दफ्तर में मुलाज़मत की कोशिश की थी वह यह पख़ निकल आई कि मिडल पास को नहीं लेंगे। बमुश्किल तमाम यह शर्त ख़त्म कराई तो

मालूम हुआ कि दफ्तर का वक्त ग्यारह बजे का है। गोया ऐन दोपहर का वक्त और वह बचपन से उस वक्त सोने का आदी है।

हकीम साहब—यह तो फिर बड़ी मुश्किल की बात है। नौकरी में तो ये बातें हुआ ही करती हैं।

दादा मियाँ—तो साहब हम बाज़ आये। फूलों में तोल तोलकर इसलिए थोड़ी पाला है कि धूप में कुम्हला जाने दें ?

हकीम साहब—मगर बेरोज़गारी और जवानी के आलम में यह आराम-तलबी भी तो मुनासिब नहीं।

दादा मियाँ—अजी मुनासिब है। जान है तो जहान है। मैं कम से कम इन बच्चों पर कोई तकलीफ़ नहीं देख सकता। अब आज ही का वाक़िया है कि इस बच्चे के लिए एक मास्टर रखा था। उस बेवकूफ़ ने न देखा आव न देखा ताव इसके कान पकड़ लिये। आग ही तो लग गई मेरे। खड़े-खड़े निकाला मैंने उसको। क़साई आया था वहाँ मास्टर का बच्चा बनकर। अरे अरे बेटा, यह हकीम दादा की टोपी है।

हकीम साहब—[घबराकर] फुँदना पकड़कर न नचाओ। मियाँ टूट जायेगा।

दादा मियाँ—ऐ बेटा, टूट जायेगा फुँदना। मेरा बच्चा···मेरा चाँद···बड़े काम का।

हकीम साहब—मियाँ टूट जायेगा, बुरी बात !

दादा मियाँ—याद है आपको कि अच्छन ने भी एक मरतबा आपकी टोपी में पानी भरकर पिया था। उसी का तो बेटा है।

हकीम साहब—अरे बेटे बिल्कुल नई टोपी है। लाओ, शाबाश ! फिर मैं खिलौने दूँगा।

बच्चा—झूठा कहीं का।

दादा मियाँ—ऐं ? [कहक़हा लगाकर] क्या बेतकल्लुफ़ी फ़रमाई है

आपने ! कल जनाब इसने मुझ को ठोंक डाला । क़सूर मेरा यह हुआ था कि प्याली में मेरे दाँत भीग रहे थे वह आप ले गये उठाकर। मैंने जो दौड़कर छीने तो वह घूँसा, वह दुहत्तड़, वह ठोकर इस छटकी ने……

हकीम साहब—[एकदम उछलकर] ऐ वह मारा ! गई नाली में टोपी । लाहौल वला क़ूवत !

बच्चा—[ताली बजाकर] अहाहा !…नाव…दादा मियाँ नाव तैर गई ।

दादा मियाँ—[हँसकर] अरे भई हकीम, रोको वह तो वाक़ई तैर गई और फुँदना आपके हाथ में है ।

हकीम साहब—क्यों निकाल रहा है अब वह किस काम की रही ?

दादा मियाँ—वाक़ई बिल्कुल नास होकर रह गई लाना तो ज़रा इधर ऐ सुब्हान, अल्लाह ! तुम इस नालायक़ को हरगिज़ खिलौने न देना ।

बच्चा—[मुँह चिढ़ाकर] ई…ई…ई…!

दादा मियाँ—[क़हक़हा लगाकर] अच्छा ठहर तो सही कमीने ! यह अपने बाप के बाप के साथ गुस्ताख़ी हो रही है ? भागा… भागा देख लिया आपने हकीम साहब ? यानी मरदूद मुझे मुँह चिढ़ाकर भागा है !

हकीम साहब—मगर शेख़ साहब, आप ये बातें न सिखाइये बच्चे को । ज़रा सख़्ती से काम लीजिये वर्ना निहायत बदतमीज़ होकर रह जायेगा । अभी ये बातें अच्छी लगती हैं, कुछ दिनों के बाद इन्हीं बातों से तकलीफ़ होगी खुद आपको ।

दादा मियाँ—सब ठीक हो जायेंगे । अच्छन को देख लीजिये । आप सब यही कहते थे कि लड़का ग़ारत करके रख दिया । मगर आख़िर हो गया न ठीक ?

हकीम साहब—सच पूछिये तो मैं अब भी ठीक नहीं समझता । अब

तक आप लाड़-प्यार में उनका नास मार रहे हैं यह जवानी देखिये और इनकी बच्चों की सी बेफ़िक्रियाँ मुलाहिज़ा फ़रमाइये कि न कुछ करते हैं, न कुछ करने की फ़िक्र होती है।

दादा मियाँ—जिसका बाप ज़िन्दा हो हकीम साहब उसको बेफ़िक्र होना ही चाहिये। अब मुझ ही को देख लीजिये कि अब्बा जान मरहूम के इन्तिक़ाल के वक़्त मेरी उम्र थी पच्चीस साल मगर मैं सिवाय कनकौवा उड़ाने और मैदान बदने के कुछ न जानता था।

हकीम साहब—इसी का तो नतीजा है कि आपने कुछ भी न किया। बाप-दादा ने जो जमा किया था, वही खर्च करते रहे। मगर अब इन बच्चों के हाल पर तो रहम कीजिये।

[बच्चे के रोने की आवाज़ ज़ोर से आती है।]

दादा मियाँ—[परेशान होकर] अरे क्या हुआ ? नवाबू, अरे भई यह नवाबू को क्या हुआ ? [आगे बढ़ते हुए] ईदू, अबे ईदू के बच्चे ! यह नवाबू मियाँ को क्या हुआ ? [दूर पहुँचकर] भई लाहौल वला क़ूवत कोई तो बोलो. [शेख साहब की आवाज़ ग़ायब और बच्चे के रोने की आवाज़ नज़दीक होती जाती है।]

दुल्हन—अपने दिल पर हाथ रखकर देखो, तुम्हारी नन्ही को जो मैं इस तरह धुतकार देती तो ?

हमीदा—भाभीजान एक मरतबा नहीं हज़ार मरतबा धुतकारिये। अगर आधी बात भी मैं कहे जाऊँ तो चोर की सज़ा वह मेरी। मगर खुदा न करे नन्ही में नवाबू की-सी हरकतें हों।

दुल्हन—खैर नवाबू में तो दुनिया जहान के ऐब हैं। तुम खुद फ़रिश्ता हो, तुम्हारी औलाद भी फ़रिश्ता है।

हमीदा—खैर फ़रिश्ता और शैतान का तो यहाँ ज़िक्र नहीं, लेकिन नवाबू की अगर आप माँ हैं तो मैं भी फूफी हूँ। कुछ मेरा

भी हक़ है।

दुल्हन—बस यही हक़ है कि जब चाहा पिटवा दिया। कभी प्यार से आधी बात भी की होती तो मैं जानती।

हमीदा—आपने अब्बा ने और भाभी जान ने अच्छे-खासे बच्चे को ग़ारत करके रख दिया है। और देख लीजिएगा इस लाड़ प्यार में किसी काम का न रहेगा यह लड़का।

दुल्हन—हाँ हाँ और कोस लो। दामन फैला-फैला कर कोसो।

[शेख़ साहब आते हैं।]

बाबा मियाँ—अरे भई यह क्या वाहियात है? यानी लड़का घर में आया और चाँदमारी शुरू हो गई। अभी वह मेरे पास खासा आदमियों की तरह खेल रहा था, अब ज़रा देखो तो हिचकियाँ बँध गई हैं।

हमीदा—अब्बा मियाँ, मुझसे क़सूर हुआ है। नवाबू बाहर से दौड़ते-दौड़ते आए और टोपी का फुँदना कीचड़ में लतपत करके जो उछाला तो मेरी सिंगार मेज़ पर पड़ा। मैंने ज़रा डाँट दिया कि यह क्या बदतमीज़ी है। बस इस लड़के ने ज़मीन आसमान एक कर दिया और भाभी जान को भी मेरा कहना इस क़द्र बुरा लगा है कि मैं क्या कहूँ।

बाबा मियाँ—तो बेटी बच्चे भला ऐसे निशान बाज़ क्योंकर हो सकते हैं कि वह कीचड़ में भरा हुआ फुन्दना उछालें तो वह तुम्हारी सिंगार मेज़ को बचाता हुआ निकल जाये।

दुल्हन—कमबख़्त से हज़ार मरतबा कहा कि उस तरफ़ न जाया कर।

बाबा मियाँ—ख़बरदार जो आइन्दा तुमने कमबख़्त कहा! कमबख़्त के मानी ये हैं कि गोया…कि गोया…गोया मतलब यह है कि बहुत बुरे हैं।

हमीदा—भाभी जान, आप तो इस तरह कह रही हैं कि गोया मैं नवाबू से जलती हूँ।

दुल्हन—ऐ जलोगी तो उसका क्या कर लोगी। उसके नाज़ उठाने वालों को ख़ुदा सलामत रखे।

दादा मियाँ—[हँसकर] बहर हाल, बहर हाल यह ननद भावजों की लड़ाई मेरे ख़याल में अब ख़त्म होनी चाहिए वर्ना मेरा शलूका न सिल सकेगा जिसमें रुई भरेंगी दुल्हन और डोरे डालेंगी हमीदा।

हमीदा—अब्बा मियाँ आप हमेशा इस क़िस्म की बातें टाल दिया करते हैं। मैं आज यह तै कराके रहूँगी कि नवाबू पर कुछ मेरा हक़ है या नहीं।

दुल्हन—हाँ हाँ क्यों नहीं? बस धुतकारने का हक़ है।

दादा मियाँ—नहीं यह वाहियात है। वह अगर इनका बेटा है तो तुम्हारा भतीजा है।

हमीदा—तो मैं उसको बदतमीज़ी से ज़रूर रोकूँगी। मुझसे इनका इस तरह ग़ारत होना नहीं देखा जा सकता।

दुल्हन—ग़ारत हो तुम्हारी यह ज़बान। ग़ज़ब ख़ुदा का यह फूफी हैं जो बच्चे को दूर पार दुश्मन मुद्दई ग़ारत कर रही हैं।

दादा मियाँ—यानी क्या मतलब! अरे भई मुझे भी तो समझा दो।

हमीदा—भाभीजान, ज़रा अपने हवास में रहिए। समझीं कि नहीं।

दुल्हन—होश की दवा औरत। यह न समझना कि मैं तुम से दबकर रह जाऊँगी।

दादा मियाँ—मुख़्तसर यह कि··· गोया लड़ाई ···अरे साहब बात तो बताओ।

हमीदा—दब कर आप क्या रहेंगी भला। भैया को ख़ुदा अक़्ल देता तो मैं उनसे पूछती कि क्या बीवी से बहन को इसी तरह बातें सुनवाई जाती हैं।

दुल्हन—ऐ तो भैया को मुझसे छुड़वा दो। तुम तो इस घर में अकेली रहना चाहती हो रानी बन कर।

दादा मियां—अस्तग़फ़िर उल्लाह ! लाहौल विला क़ूवत !

हमीदा—घर तो खैर आपको मुबारक रहे मगर बाप-भाई के घर से शादी के बाद भी लड़की को कुछ-न-कुछ वास्ता रहता जरूर है।

दुल्हन—जरूर है वास्ता, क्यों न रहे ? अलबत्ता मैं अब एक मिनट भी यहाँ नहीं रह सकती।

दादा मियां—अरे साहब अपना सर पीट लूँगा। यह क्या वाहियात है ?

हमीदा—[रोनी आवाज में] अब्बा मियाँ, आप मुझको इजाज़त देदीजिये कि मैं यहाँ से दफ़ा हो जाऊँ।

दादा मियां—लो वह शरीर बाबा को भी पकड़ लाया।

अच्छन—[आते हुए] यह क्या क़यामत बरपा है घर में ? और यह नवाबू का क्या हाल है ? तमाम चेहरा सुर्ख़ी हिचका बंधी हुई। अरे भई एकदम से ज़िबह कर दो।

दुल्हन—कोई ज़िबह हो या किसी की कोई गत बन जाये तुमको इससे क्या मतलब ? अपने कनकौवों में पड़े रहो।

अच्छन—अब्बा जान के सर की क़सम पेच छोड़ कर बदहवास भागा हुआ आया हूँ और तुम कहती हो कि यह नहीं वह। ज़रा दिल तो देखो मेरा कैसा धड़क रहा है।

दादा मियां—अच्छा बैठ जाओ, घबराओ नहीं भई यह ननद भावज की लड़ाई होगी ग़ालिबन कुछ।

दुल्हन—मेरे लिए फ़ौरन तांगा मँगवा दो। अब जूते खाने की हद हो चुकी है।

हमीदा—नहीं भैया आप इनके लिए नहीं मेरे लिए मँगवा दीजिये।

अच्छन—हमीदा की नाक पर ग़ालिबन कोई मक्खी बैठ गई होगी। मगर सवाल तो यह है कि इस बेजुबान मासूम बच्चे का क्या क़ुसूर था ?

हमीदा—अफ़सोस यह है कि वह क़ुसूर आपकी समझ में नहीं आ सकता लिहाज़ा मेरा क़ुसूर समझ लीजिए।

अच्छन—बड़ी समझदार एक तुम्हीं तो हो। यह सब दिमाग़ ख़राब किया हुआ है तुम्हारे शौहर-ए-नामदार का। बड़ा प्रोफ़ेसर बना फिरता है। अब्बा जान के सर-ए-अज़ीज़ की क़सम मैं उस दिन खून का घूंट पी कर रह गया जब उन हज़रत ने नवाबू के बारे में कहा—

ल डला वेटा था इक माँ-बाप का।

जाहिल कहीं का। जिसको यह भी शुऊर नहीं कि किसी बच्चे के मुताल्लिक़ 'था' कहना कितनी बदशिगूनी है।

हमीदा—ख़ैर मैं उनकी तरफ़ से भी माफ़ी माँगती हूँ और खुद माफ़ी चाहती हूँ। अब यहाँ न रहूँगी, न ये बातें होंगी।

अच्छन—ये धमकियाँ दो अब्बा जान को। मगर मैं नवाबू के मुता-ल्लिक़ एक बात भी सुनना नहीं चाहता।

दादा मियां—[रोकर] खुदा जाने इस घर को किसकी नज़र लग गई है। हर वक़्त की किलकिल हर वक़्त की किल किल।

हमीदा—ईदू, एक ताँगा बुलाकर लाओ।

दादा मियाँ—[रोकर] बुढ़ापे में यह रंज उठाने के लिए मुझे छोड़ गई और खुद जन्नत में मज़े कर रही होंगी।

हमीदा—नन्ही, उठाओ अपनी किताबें वग़ैरा।

अच्छन—यह अच्छी ज़बरदस्ती है कि साहब या तो बच्चे को मार डालो वर्ना हम घर छोड़े देते हैं।

दादा मियां—[रोते हुए] किसी की आई हुई मुझको आजाती तो मैं समझता मिट्टी ठिकाने लग गई।

दुल्हन—मैं कहती हूँ जी कि तुम मुझको क्यों नहीं जाने देते।

हमीदा—लाये ईदू ताँगा? रखो बक्स, यह होल्डआल, यह सूटकेस, पानदान, यह बुग़ची।

[दादामियाँ के सिर्फ़ रोने की आवाज़ आती है]

हमीदा—तसलीम अब्बा। आदाब अर्ज़ भाईजान। तसलीम भाभी जान! [जाती है।]

बच्चा—[मुँह चिढ़ाकर] ई! ई। ई।

दादा मियाँ—[इसी अंदाज़ से रोकर] ई! ई! ई।

ज़िन्दगी बनाम ज़िन्दादिली

[दूर पर नाच की महफ़िल गर्म है, लोग लुत्फ़ ले रहे हैं, दाद दे रहे हैं और उसकी कुछ देर के बाद एक औरत और एक मर्द के क़हक़हों की आवाज़ नुमायाँ होती है जो नाच की आवाज़ पर छा जाती है। एक शख्स आकर उन हँसने वालों को डाँटता है।]

आने वाला—बंसी, यह क्या आफ़त मचा रखी है? ठाकुर साहब ख़फ़ा हो रहे हैं। उनके यहाँ तो हो रही है महफ़िल और यहाँ ठट्ठे लग रहे हैं।

बंसी—अच्छा सरकार अब न हँसेंगे। सुनलो ननकू की माँ, अब न हँसना।

ननकू की माँ—वाह, मैं कब हँस रही थी? तुम ही तो हँसा रहे थे।

आने वाला—अच्छा तुम जानो और तुम्हारा काम। ठाकुर साहब का गुस्सा तो तुम जानते ही हो।

बंसी—नहीं सरकार, आप जानिये अब कोई न हँसेगा।

आने वाला—[जाते हुए] हाँ, हमने जता दिया है। फिर तुम जानो।

[क़दमों की चाप]

[ननकू की माँ फिर दबी हुई हँसी हँसती है।]

बंसी—अरे अब चुप भी रहो, या निकलवाओगी यहाँ से?

ननकू की माँ—यह तो अच्छी ज़बरदस्ती है। कोई अपने घर में हँसे बोले भी नहीं।

बंसी—बात यह है ना कि खुद तो हँसी आती नहीं उन लोगों को। लाखों जतन करते हैं पर जब भाग ही में हँसी न हो तो क्या करें। दूसरों का हँसना भी नहीं देख सकते।

ननकू की मां—तुमने ठाकुर साहब की ऐसी नक़ल उतारी थी कि मेरी हंसी तो अब तक रुक नहीं रही है। हां तो जब तुम गाड़ी जोतकर ले जाते हो तो क्या कहते हो?

बंसी—होगा, अब जाने दो फिर कभी बता देंगे। मैं तो यह कहता हूं कि ये लोग हंसी और खुशी ढूंढते फिरते हैं पर ढूंढे नहीं मिलती। जो नाच-रंग हो रहा है सब खुशी ढूंढने के लिए नहीं तो और क्या है। और एक हम हैं कि हमारी हंसी डांट-डांट कर रुकवाई जाती है और नहीं रुकती।

ननकू की मां—बाहर रंगरेलियां हो रही हैं और अन्दर ही अन्दर बहू जी का यह हाल होगा कि भागों को बैठी रो रही होंगी। परमेश्वर का दिया सब कुछ है पर पति का प्रेम भाग में नहीं।

बंसी—तुम ही जानो! न हुआ मैं ठाकुर जी कि घर में तुम को अकेला छोड़ता और बैठक में आगे तो रखता उगालदान और पीछे लगाता गावतकिया, इधर हुक्का होता और उधर पानों की थाली। बीड़े पर बीड़े मुँह में ठूंसता जाता और छमाछम नाच देखकर तोंद सहलाया करता।

ननकू की मां—और वह भी तो बताओ कि मुँह टेढ़ा करके किस तरह कहते नाचने वाली से 'ऐ जियो!'

बंसी—[आवाज़ बनाकर] ऐ जियो। वाह, वाह, वाह! यह बात है!

[ननकू की मां मारे हँसी के लोट-पोट हो जाती है।]

बंसी—अरे अरे! फिर हँसी शुरू हुई। दरवाज़ा बन्द करके हँसी नहीं तो फिर डांट पड़ेगी।

ननकू की मां—[हंसते हुए] हँसूंगी तो मैं ज़रूर चाहे तुम दरवाज़ा

बन्द कर दो।

बन्सी—अच्छा अच्छा, मैं दरवाज़ा बन्द किये देता हूँ तुम जी खोल कर हँस लो। [दरवाज़ा बन्द कर देता है।]

ननकू की मां—क्या क्या नखरे होते हैं इन लोगों के भी। जानो यह धन-दौलत दिमाग़ ही उलट देती है।

बन्सी—अरे कल का क़िस्सा तो सुनो, मुझे हुक्म मिला गाड़ी लगाऊँ जल्दी से। मैंने जल्दी-जल्दी घोड़ों को दाना खिलाया, गाड़ी साफ़ की मिनटों में गाड़ी ले जाकर दरवाज़े पर खड़ी कर दी। अब आप निकले ड्योढ़ी से। पहले रामाधीन ने उगालदान गाड़ी में रखा।

ननकू की मां—और नहीं तो क्या भला अमीर आदमी का थूक सड़क पर गिर जाये। [हँसती है।]

बन्सी—फिर द्वार के महाराज दौड़े हुए आये और पान से भरा हुआ नागरदान रख गये।

ननकू की मां—तुम्हारे बाहर जाने के वक़्त मैं भी दो-चार बीड़े बना दिया करूँगी।

बन्सी—बड़ी कृपा आपकी। अच्छा सुनो तो सही। बड़ी मुश्किल से आप गाड़ी पर बैठे और हुक्म मिला कि वैद जी के यहां चलो।

ननकू की मां—वैद जी के यहां? इतनी दूर के लिए गाड़ी?

बन्सी—अभी सुनो तो सही। मुझ से तो कहा वैद जी के यहां चलो और फ़िर कहने लगे कि अच्छा ठहरो। पहले तुम लपक कर देख लो कि वैद जी बाहर आ भी गये हैं या नहीं।

ननकू की मां—घोड़ों के थकान का ख़याल आ गया होगा।

बन्सी—नहीं जी खुद गाड़ी पर बैठकर भी तो हमारे सरकार थक जाते हैं। सच तो जब गाड़ी पर कहीं जाकर उतरते हैं तो इस तरह हाँपते हैं जैसे आप ही तो गाड़ी खींचकर लाए हैं।

बड़ी मेहनत पड़ती है गाड़ी पर आराम से बैठने में भी ।

ननकू की माँ—हां तो फिर तुम गये वैद जी को पहले देखने ?

बन्सी—दो क़दम तो वैदजी के घर देखकर मिनट भर में वापस आया और कह दिया कि वैद जी बाहर बैठे हैं । अब मुझे हुक्म मिला कि ले चलो वैद जी के यहां । मैंने गाड़ी ले जाकर वैद जी के यहां खड़ी कर दी । ठाकुर जी इतने ही में थक चुके थे । हांपते-खांसत-खांसते गाड़ी से उतरे ।

[कुण्डी खटखटाने की आवाज़]

ननकू की माँ—कौन है ?

सरजू—मैं हूँ बहू जी, सरजू ।

बन्सी—अरे सरजू भैया हैं । खोलो दरवाज़ा जल्दी से अब नक़ल ठीक रहेगी ।

[दरवाजा खुलने की आवाज़, फिर वन्द होने की आवाज]

आओ सरजू भैया, खूब आ गये । तुम्हारे मालिक का भी ज़िक्र था । अपने मालिक की नक़ल तो मैं उतार लेता हूं मगर वैद जी की नक़ल तुम ठीक उतारते हो ।

सरजू—अरे क्या पूछते हो भैया वैद जी तो फिर भी भले मानुस हैं । पर उनके पास तो ऐसे भांत-भांत के जानवर आते हैं कि बस कुछ न पूछो ।

बंसी—आज जब हमारे ठाकुरजी तुम्हारे यहां गए हैं उसका हाल मैं ननकू की मां को सुना रहा था और सोच रहा था कि ठाकुर साहब और वैद जी दोनों की नक़ल कैसे करूँगा ।

ननकू की मां—सरजू भैया वैद जी की नक़ल तो तुम कर ही लोगे ।

बन्सी—ऐसी-वैसी नक़ल ? बस ऐसी नक़ल होगी कि जानो वैद जी ही बैठे हैं ।

ननकू की मां—बस तो ठीक है । हां तो जब ठाकुर जी पहुँचे तो क्या हुआ ?

सरजू—ठाकुर जी जब पहुँचे तो वैद जी बैठे एक मरीज़ को देख रहे थे। ठाकुर जी को देखते ही उस मरीज़ को छोड़ा वहीं और दौड़े ठाकुर जी की तरफ़। [नक़ल उतार कर] आइये आइये, ठाकुर जी महाराज। पधारिये। ऐसे आइये, इधर को, यही पधारिये।

[ननकू की माँ हँस रही है।]

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए] हुँह, हुँह, बेहतर हूं। राम राम राम राम हुँह, वैद जी महाराज, अब तो यह दशा हो गई है।

[ननकू की माँ हँस रही है।]

सरजु—[नक़ल उतारते हुए] कोई चिन्ता नहीं, सब ठीक हो जाएगा। कुछ भूख बढ़ी ?

बंसी—[नक़ल उतारते हुए] कहाँ भाई भूख ही बढ़ जाये तो फिर क्या कहना है ? सवेरे मुश्किल से सेर भर दूध पिया होगा ज़रा सी जलेबियां डालकर। मुश्किल से पाव-डेढ़-पाव बादाम का हलवा खाया गया।

[ननकू की मां अनायास हँस पड़ती है।]

सरजू—[वैद की नक़ल करते हुए] हूँ...हूँ...हूँ। अच्छा दोपहर का भोजन कैसा रहा ?

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए] कुछ नहीं बस यह जानो कि कुछ भी नहीं खाया। दस बजे बाग़ से कुछ फल-फलाहार आ गये थे, थोड़े-बहुत खाये थे तो भूख ही जाती रही। बड़ी मुश्किल से पाँच-छः पूरियाँ, तीन पराँठे और इतना सा बिल्कुल कोई तीन पाव मेवे का हलवा खाया और यह मालूम हुआ कि जैसे पेट बिल्कुल भर गया है।

[ननकू की माँ हँस रही है।]

सरजू—[नक़ल उतारते हुए] ठाकुर जी यह तो बड़ी बुरी बात है। आप कोशिश कर करके खाइए। देखिए ना यह तो हाल

होकर रह गया है आपका वज़न घटते-घटते मैं तो जानूं कोई ढाई मन रह गया होगा।

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए सांस भरकर] हां कोई दो मन पच्चीस सेर था परसों तक।

ननकू की मां—[हँस कर] हाय राम !

सरजू—[नक़ल उतारते हुए] अच्छा आज देखिए मैं ऐसी दवा देता हूं कि वज़न भी ठीक हो जाए और भूख भी ऐसे लगे कि बस आप भी याद करेंगे। पर आप हर वक़्त तो ज़मींदारी और रियासत की चिन्ता में रहते हैं। यह चिन्ता छोड़ दीजिए।

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए] कैसे छोड़ूं यह चिन्ता महाराज ? अब देखिये पिताजी के एक काका थे उनकी मौसी के दामाद की बड़ी भारी रियासत थी और उसका मालिक कोई भी नहीं था। न उनके कोई बाल-बच्चा। और उसका कोई हक़ मुझ ही को पहुंचना चाहिए था कि नहीं।

सरजू—[नक़ल करके] क्यों नहीं, क्यों नहीं। सोलह आने आप ही हक़दार हैं। अच्छा तो क्या हुआ ?

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए] अरे साहब हुआ यह कि मैं तो अपनी बीमारी की वजह से इधर पड़ा रहा और वहां उनके एक सौतेले भाई कहीं से आ गये और इतनी बड़ी रियासत सब उन्हीं की हो गई। अब बताइये कि इन बातों का असर कैसे न पड़े ?

सरजू—[नक़ल उतारते हुए] ठीक है साहब आप जितनी भी चिन्ता करें थोड़ी है।

बन्सी—[नक़ल उतारते हुए ठण्डी सांस लेकर] सब भागों की बात हैं वैद जी, हमारे ऐसे भाग कहां थे कि इतनी बड़ी रियासत मिल जाती।

ननकू की मां—[हंस कर] इधर-उधर की चिन्ता ये लोग समेटते फिरते हैं। दूसरों का धन न मिलने पर यह हाल है।

सरजू—[अपनी असली आवाज़ में] भैया मैं तो सच कहता हूं कि ऐसे हत्यारों से हम गरीब आदमी हज़ार दर्जे अच्छे। न पराये माल के लिए दिल में खोट है, न अपने माल की ऐसी चिंता।

बन्सी—अरे अपने पास धरा ही क्या है जिसकी चिन्ता हो। वे हलवे खाने के लिए भूख बढ़वाते फिरते हैं और यहां चटनी-रोटी खाकर जो आनन्द मिलता है वह उनको सपने में भी न मिलता होगा। हां ननकू की मां को ज़ेवरों की कमी जरूर बुरी लगती है।

ननकू की मां—[बुरा मान कर] क्यों मेरे ऊपर दोष लगाते हो? ऐसे ज़ेवरों से मेरे ये कांच के ज़ेवर अच्छे। यह तो नहीं होता कि ठकुराइन की तरह लदी तो बैठी हूँ सोने में और जब देखो मुँह बना हुआ है। [नक़ल उतारकर] हाय राम धड़कन। हाय राम वह क्या होता है जुक़ाम कि जाने नजला।

[बंसी और सरजू क़हक़हे लगाकर हंसते हैं।]

सरजू—अरे वाह बहू जी, तुमने तो बहू जी की ख़ूब नक़ल उतारी।

बंसी—रोज़ का यही किस्सा है। जब मैं घोड़े मल-दल कर दाने-घास से छुट्टी पाकर बैठता हूं तो रोज़ यह इसी तरह ठकुराइन जी और ठाकुर जी की बातें कर करके हंसाती है। रोज यही चकल्लस रहती है।

ननकू की मां—आज की सुनो सरजू भैया! जो हवेली में गई तो देखती क्या हूँ कि ठकुराइन भारी साड़ी बांधे सिर से लेकर पैर तक सोने में जानो पीली हो रही थीं पर मुँह ऐसा बना हुआ था कि जानो सारे संसार की विपदा इन्हीं पर लिपट पड़ी है। मैंने जो कामिनी से पूछा तो पता चला कि ठाकुर जी आज कल छोटी ठकुराइन के यहां रहते हैं और

यह यहाँ बैठी कर्मों को रोया करती हैं।

बंसी—ये सब धन के मज़े हैं। मैं होता ठाकुर तो ननकू की माँ तुम भी यों ही रोतीं।

सरजू—यह सब विपदा रुपये के साथ आती है बहू जी।

ननकू की मां—यही तो मैं कह रही हूँ कि ऐसे ज़ेवर किस काम के कि ऊपर से तो पहने हैं ज़ेवर और भारी-भारी साड़ी पर अन्दर से सुलग रहे हैं।

बंसी—क्यों सरजू भैया मैं भी ठाकुर जी की तरह दूसरा विवाह क्यों न कर डालूँ अरे हाँ ?

ननकू की मां—करो न विवाह रोकता कौन है ? मेरे पास एक साड़ी है; आधी फाड़ कर उसे दे दूँगी, आधी खुद बाँध लूँगी।

[हँसती है और वे दोनों भी हँसते हैं।]

सरजू—और खिलायेंगे कहाँ से छोटी बहू जी को ?

ननकू की मां—खाने का क्या है यह तो घोड़े के साथ घास-दाना खायेंगे और मैं इनके हिस्से की रोटी-चटनी उसे खिला दिया करूंगी

[हँसती है।]

बंसी—लो सुन लो सरजू भैया। अब यह मुझे घास खाने को देंगी।

[बच्चे के रोने की आवाज आती है।]

ननकू की मां—ननकू जाग उठा

[बच्चे के रोने की आवाज़ बराबर आती है।]

बंसी—उठा लाओ उसे यहीं।

[ननकू की मां जाती है और बच्चे के रोने की आवाज़ लगातार आ रही है।]

सरजू—कैसा है ननकू ? इधर कुछ तबियत बिगड़ गई थी ?

[बच्चा रो रहा है।]

बंसी—अरे सब ठीक है। गरीब आदमी के बच्चे ज्यादा बीमार

नहीं होते ।

[ननकू की माँ बच्चे को खिलाती है, बच्चे का रोना ख़त्म ।]

ननकू की मां—राजा हैं, चन्दा हैं । ननकू राजा हैं । अरे, अरे, अरे ।

बंसी—भला ननकू की माँ अगर यह हमारे ठाकुरजी का बच्चा होता तो ।

ननकू की मां—मैंने बताया था तुमको और तुमने खुद ठाकुर साहब बन कर खूब नक़ल उतारी थी ।

सरजू—क्या होता है भला उनके यहाँ हम भी तो कुछ सुनें ।

बंसी—देखो तुम अभी फ़ैसला देख लेना । हां ननकू की माँ भला कैसे ?

ननकू की मां—तुम भी तो ठाकुर जी बनो ।

बंसी—[नक़ल उतारते हुए] मैंने कहा सुनती हो । अरे यह मैंने कहा सुनती हो यह नंगे पैर फिर रहा है । फिर छींकने लगेगा ।

ननकू की मां—[नक़ल उतारते हुए] अरे ओ मेहरी! अरी ओ दासी! लाला को उठाना दौड़कर । ऊपर की धूप और नीचे की सीलन अभी छींकें आ चुकी हैं ।

बंसी—[नक़ल करके] जितनी जितनी देख भाल की जाये उतने ही बच्चे बीमार रहते हैं । मैंने तो कभी बंसी के बच्चे को बीमार देखा ही नहीं । धूप में वह पड़ा रहे, नंगे पैर वह फिरे ।

ननकू की मां—[नक़ल उतार कर] अरे तो उनका क्या है ? वे लोग बड़ी सख्त जान के होते है । ननकू को उसकी माँ जाड़े में ठण्डे पानी से जो नहला देती है ।

[सरजू हँस रहा है ।]

बंसी—[नक़ल उतार कर] राम, राम, राम ! जाड़े में नहलाती है और फिर पानी से और वह भी ठण्डा ।

[सरजू हँस रहा है ।]

ननकू की मां—[नक़ल उतारकर] इन लोगों पर जाड़ा असर करे न गर्मी। लू के झक्कड़ चला करते हैं और वह लड़के को उठाकर यों ही डाल देती है।

बंसो—[नक़ल करके] अरे राम राम ! भला हमारे बच्चे हों तो झुलस ही के रह जायें। खस की टट्टियों में तो यह हाल होता है कि कुम्हला कर रह जाते हैं। लाना तो सही उसे लका को कहीं उसे बुख़ार तो नहीं है। आँखें क्यों बन्द कर रहा है ?

ननकू की मां—[नक़ल करके] बुख़ार, क्या कहा बुख़ार ? देख तो सही मेहरी ज़रा जल्दी से वैद जी को तो बुलवा। अरे हवा से तो उसे हटा लो।

बंसी—[नक़ल उतार कर] बुख़ार तो नहीं है, पर निढाल है कुछ। वैद जी से कहलवा ज़रूर दो।

ननकू की मां—[नक़ल करके] हे परमात्मा ! मेरे लका को क्या हुआ ? हे भगवान् !

बंसो—[नक़ल उतारकर] घबराओ नहीं यों ही कुछ सुस्त हो गया है।

[जंजीर खड़काने की आवाज़]

बंसी—[चुपके से] चुप रहो। [ज़ोर से] कौन है ? [उठकर दरवाज़ा खोल देता है।]

आने वाला—ठाकुर जी गाड़ी मांग रहे हैं, बाई जी को पहुँचाना है।

बंसी—अच्छा सरकार अभी लाया गाड़ी लगाकर। [आदमी चला जाता है।]

सरजू—जाओ भैया तुम उधर जाओ, मैं भी अब चलूंगा। पर ख़ूब नक़ल उतारते हो तुम दोनों मिलकर।

बंसी—नक़ल नहीं भैया, यही बातें करके हम दोनों परमात्मा का शुक्र अदा करते है कि उसने हमको यह चिन्ता तो नहीं दी। हम ग़रीब ज़रूर हैं पर अमीरों से अच्छे हैं।

ननकू की मां—अपनी नींद सोते हैं और अपने हालों में ख़ुश हैं। न

भूख बढ़वाने की ज़रूरत न ठकुराइन की तरह रोज़ का रोना।

बंसी—तुम ही जानो, पर मैं तो दूसरा विवाह करूँगा ज़रूर।

[सरजू हँसता है।]

ननकू की मां—कल करते आज कर लो, पर दाना-घास ही खाना होगा।

[बंसी हंसता हुआ चला जाता है।]

खुदा हाफ़िज़

[मीर साहब अपने मुसाहिब लगने वाले दोस्तों में बैठे हुए सफ़र के बारे में तबादला-ए-ख़याल कर रहे हैं।]

मीर साहब—अमाँ तुम्हीं बताओ मिर्ज़ा साहब कि इस रेल के सफ़र में नसीबे-दुश्मनाँ जान जोखम तो नहीं है।

मिर्ज़ा साहब—आपकी भी वल्लाह है कि क्या बातें हैं! यानी मैं कह तो रहा हूँ कि इस रेल के सफ़र में सर के बाल सफ़ेद कर लिये हैं। फिर आपका यह सफ़र तो क़दम भर का है। दो स्टेशन बीच में, तीसरे पर आप ख़ैर से उतर पड़ेंगे।

मीर साहब—इंशा अल्लाह। मगर भई बात यह है कि पहला इत्तिफ़ाक़ है, इसीसे जी घबराता है। अमाँ तुम भी चलो ना साथ। तुम को ज़रा इस सफ़र का तजुर्बा है और मैं बिल्कुल नया आदमी हूँ। तुम्हारे सरे अज़ीज़ की क़सम कलेजा हाथों उछलता है।

मिर्ज़ा साहब—अगर आप कहते हैं तो मुझे क्या उज्र हो सकता है? मगर आपने तो वल्लाह है कमाल कर दिया। इस ज़माने में आप ऐसे बहुत कम निकलेंगे जो रेल के सफ़र से नावाक़िफ़ हैं।

मीर साहब—भई यक़ीन जानो मैं ख़ानदानी वज़ा के ख़िलाफ़ यह

बात कर रहा हूँ। अल्लाह जन्नत नसीब करे अब्बा जान मरहूम तो कभी इस मुहल्ले से बाहर न निकले थे, और खुदा बख्शे दादा जान मरहूम के मुताल्लिक़ मशहूर है कि वह कभी अपने घर से बाहर नहीं निकले। एक मैं हूँ, देश छोड़ कर परदेश की ठानी है।

[दरवाज़ा खुलने और चाप की आवाज़]

मिर्ज़ा साहब—लीजिए, लीजिए शेख़ साहब तशरीफ़ ले आये।

शेख़ साहब—[आगे आकर] आदाब बजा लाता हूँ हुज़ूरे-वाला।

मीर साहब—तसलीमात अर्ज़ है भाई साहब। खूब तशरीफ़ लाये।

शेख़ साहब—जी हां, अभी सुना था कि सवारी कहीं सैर को जा रही है।

मीर साहब—लो और सुनो। यह सैर-ओ-तफ़रीह है कि आदमी देश छोड़कर परदेस का हो जाये? मगर क्या करूँ मजबूर हूँ। जायदाद का मुक़द्दमा है, नहीं जाता हूँ तो ख़ानदानी जायदाद जाती है। वर्ना भाई तुम जानते हो कि हमारे ख़ानदान को सफ़र से क्या इलाक़ा।

शेख़ साहब—बजा फ़रमाते हैं आप। बेशक तशरीफ़ ले जाना निहायत ज़रूरी है।

मिर्ज़ा साहब—भाई साहब, हमारे मीर साहब रेल के सफ़र से सख्त परेशान हैं आप ही कुछ समझाइए।

मीर साहब—मैं परेशान नहीं हूँ अलबत्ता पहला इत्तिफ़ाक़ है और सवारी भी वह ऐसी जिसके न लगाम, न जिस पर चाबुक का असर। और सुना है फिर भी वह हवा से बातें करती है।

शेख़ साहब—ऐ जनाब इसमें ज़रा भी फ़िक्र की बात नहीं। मैं खुद बराबर सफ़र करता ही रहता हूँ निहायत आराम की सवारी है।

मिर्ज़ा साहब—मैंने पहले ही अर्ज़ किया था लेकिन आपको इत्मीनान

नहीं होता और मुझको भी साथ लिए जाते हैं।

मीर साहब—तो क्या शेख़ साहब क़िबला को मैं छोड़ दूँगा ?

शेख साहब—नहीं हज़रत मैं तो माफ़ी चाहूँगा। आजकल घर में ज़रा अलील हैं और खुद मुझको भी सुबह छींकें आ रही थीं।

मीर साहब—यह तो वल्लाह हो ही नहीं सकता कि हम परदेस को सिधारें और हमारे एहबाब देस में रहें। आपको तो मैं छोड़ ही नहीं सकता।

मिर्ज़ा साहब—भाई साहब, आपने कभी मीर साहब क़िब्ला की किसी बात में कोई उज्र नहीं किया है।

शेख साहब—मैं और उज्र करूँ ? अस्तग़ फ़िर उल्लाह ! मैं तो सिर्फ इजाज़त चाहता हूँ। वह भी अगर मंज़ूर नहीं है तो जो हुक्म हो बन्दा हाज़िर है।

मीर साहब—बस तो भाई साहब आप फ़ौरन घर तशरीफ़ ले जाकर उल्टे पैरों वापस आजाइये इसलिए कि अब वक्त बहुत कम है।

शेख साहब—गाड़ी चार बजे जाती है और अभी एक ही तो बजा है।

मीर साहब—यह दुरुस्त है मगर क्या ऐतबार इस बेलगाम, घोड़े की गाड़ी का और जो पहले ही चल दे।

मिर्ज़ा साहब—जी नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मगर एहतियात अच्छी चीज़ है। अगर घण्टा दो घण्टा पहले स्टेशन पर पहुँच जायें तो अच्छा है।

शेख साहब—तो मैं इजाज़त चाहता हूँ। अभी हाज़िर हुआ।

मीर साहब—बिस्मिल्लाह मगर मैं इंतिज़ार कर रहा हूँ।

शेख साहब—मैं अभी हाज़िर हुआ। बस गया और आया। [जाता है।]

[पैरों की चाप, दरवाज़े की आवाज़। मीर साहब हुक्का पीते हैं और दौलत आता है।]

मीर साहब—क्यों दौलत क्या बात है ?

दौलत—सरकार बिस्तर में तकिये, तकनियां, तोशक, चादर, शाल पलंगपोश रख दिया है। और कुछ तो न रखा जायेगा ?

मीर साहब—और लिहाफ़ ?

मिर्ज़ा साहब—ऐं, यानी इस गर्मी में लिहाफ़ भी ले जाइयेगा ?

मीर साहब—भाई परदेस का मामला है, मालूम नहीं वहां का मौसम कैसा हो ?

मिर्ज़ा साहब—चार क़दम पर वह जगह है जहां पर आप तशरीफ़ ले जा रहे हैं। वहां का मौसम वही है जो यहां का है।

मीर साहब—फिर भी अगर लिहाफ़ रख लिया जाये तो क्या हर्ज है। और हां मच्छरदानी भी बिस्तर में रख देना।

दौलत—सरकार मच्छरदानी के बांस भी ?

मीर साहब—बांस हैं तो ज़रूरी मगर क्यों भई मिर्ज़ा साहब बांसों में ज़रा तवालत है।

मिर्ज़ा साहब—अजी बांस-वांस नहीं, जो देखेगा हँसेगा।

मीर साहब—अच्छा बांस न रखो मगर देखो एकाध क़ालीन और एकाध गाव तकिया ज़रूर अलाहिदा बांध लेना।

मिर्ज़ा साहब—यह सब क्या होगा ?

मीर साहब—यानी वहां क्या बैठने-बैठने की ज़रूरत न होगी ?

मिर्ज़ा साहब—दिन भर का क़याम है और एक रात गुज़ार कर वापसी का इरादा। उसके लिए यह सब झगड़ा।

मीर साहब—तो आख़िर बग़ैर सामान के सफ़र करने से फ़ायदा ?

मिर्ज़ा साहब—बेहतर है। अगर आपकी यही मर्ज़ी है तो मुनासिब है।

दौलत—सरकार कोई और चीज ?

मीर साहब—कपड़ों के दोनों बक्स, लोटे तश्त, साबुनदानी, मंजनदान, तौलिये, चाय के लिए पतीली, ग्लास, थालियां, अंगीठी, कोयलों का थैला, चाय के सब बर्तन वग़ैरा रख लिये हैं ?

मिर्ज़ा साहब—खुदा की पनाह ! इतना सामान ?

मीर साहब—भाई परदेस का मामला है। क्या घर से यूँही चल दिया जाये ?

[दरवाज़ा खुलता है, रौनक़ मुलाज़िमा आती है।]

मीर साहब—क्या है रौनक़ ?

रौनक़—अल्लाह सलामती रखे।

मीर साहब—अरी नेक वक़्त यह कश्ती में क्या लाई है ?

रौनक़—क़ुरबान जाऊं सरकार। ये बड़ी बेगम के यहाँ से गिलोरियाँ, फूल और इमाम ज़ामिन * आया है।

मीर साहब—अच्छा अच्छा रखो इसे और बड़ी बेगम को सलाम कह दो।

रौनक़—सरकार, अभी तो और कश्तियाँ भी हैं।

मीर साहब—यानी और हैं अभी ?

रौनक़—जी हाँ सरकार। अल्लाह रखे सरदार दुल्हन, बहू बेगम, शमशाद महल, नूर महल, क़मर दुल्हन सभी ने तो इमाम ज़ामिन भेजे हैं।

मीर साहब—ख़ूब ख़ूब ! लाओ भई वो कश्तियाँ भी ले आओ।

रौनक़—और अल्लाह सलामत रखे बहू बेगम और क़मर दुल्हन ने नाश्ता भी भेजा है।

मीर साहब—इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत थी ? ख़ैर नाश्ता तो दौलत को देदे और कश्तियाँ यहाँ ल आ।

रौनक़—और सरकार, बेगम साहब ने कहा है कि ज़री महल में भी तशरीफ़ ले आयें।

---

* यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व बाज़ू में बांधा जाने वाला रुपयों का तावीज़ ताकि यात्री सकुशल अपनी मंजिल तक पहुँच जाये।

मीर साहब—अच्छा तू चल मैं आता हूँ।

[रौनक़ जाती है।]

मीर साहब—क्यों भई मिर्ज़ा तो मैं हो आऊँ ज़रा महल में ?

मिर्ज़ा साहब—बिस्मिल्लाह। ज़रूर तशरीफ़ ले जायें और मेरा आदाब भी अर्ज़ करें बेगम साहबा से। मैं जब तक ज़रा घर से हो आऊँ।

मीर साहब—नहीं भाई साहब, यह नहीं हो सकता। गाड़ी का वक्त क़रीब है।

मिर्ज़ा साहब—हज़रत, मैं अभी हाज़िर हुआ। ग़रीबख़ाना कौन-सा दूर है।

मीर साहब—मगर भई जल्दी आना।

मिर्ज़ा साहब—मैं अभी उल्टे पैरों वापस आया।

[मिर्ज़ा साहब जाते हैं। पैरों की चाप और दरवाज़े की आवाज़ सुनाई देती है।]

मीर साहब [कश लगाकर] अच्छा मैं ज़रा हो ही आऊँ महल में।

[दरवाज़ा खुलता है, बेगम आती है।]

बेगम—ए मैं कहती हूँ सिधारने का वक्त आ गया है और बाहर से आने को दिल ही नहीं चाहता।

मीर साहब—नहीं तो बेगम मैं तो बस आ ही रहा था। ज़रा मिर्ज़ा साहब और शेख़ साहब को साथ ले जाने के लिए तैयार कर रहा था।

बेगम—तो वह तैयार हो गये ? चलो अच्छा हुआ दिल भी बहलेगा और अकेले भी न रहोगे।

मीर साहब—हाँ साहब, बड़ा इत्मीनान हो गया। परदेस का मामला है एक से दो भले।

बेगम—मगर मेरा जी लगा रहेगा, जाते ही ख़त डाल देना।

मीर साहब—भला यह भी कोई कहने की बात है।

बेगम—अच्छा जैसे आज असल खैर से गये तो कब पहुँचोगे ?

मीर साहब—आज ही बस छ: बजे तक।

बेगम—चलो हटो, चले हैं मुझसे मज़ाक़ करने। चालीस कोस का सफ़र है और आज ही पहुँच जायेंगे बेचारे।

मीर साहब—तुम्हारे सरे-अज़ीज़ की क़सम बेगम बस दो घण्टे, बल्कि इससे भी कम में पहुँच जायेंगे।

बेगम—आखिर इतनी तेज़ जाने की क्या ज़रूरत है कि हवा के घोड़े पर सवार होकर आदमी जाये।

मीर साहब—भई तो इसको मैं क्या करूँ ? कहते हैं कि रेल ऐसी ही तेज़ चलती है।

बेगम—ऐ है ! मुझे तो हौल हो जाये।

[दरवाज़े पर दस्तक]

शेख साहब—[बाहर से] जनाब मीर साहब क़िब्ला, ज़रा अब जल्दी कीजिये वक्त क़रीब है।

मीर साहब—बहुत बेहतर, मैं तो बस आप ही का मुन्तज़िर था। अभी आया।

बेगम—ऐ तो लाओ इमाम ज़ामिन बाँध दूँ और ज़रा सा दही चख लो। अल्लाह असल खैर से वापस लाये।

रौनक़—सरकार दही-मछली।

बेगम—रौनक़, ज़रा कश्तियाँ उठा मैं इमाम ज़ामिन बाँध दूँ।

मीर साहब—हाँ ज़रा जल्दी करो बेगम वक्त कम है।

बेगम—ऐ ऐसी भी क्या जल्दी कि हाथ-पैर फूल जायें। तुम ही तो अब तक बैठे रहे।

रौनक़—लीजिये सरकार यह बड़ी बेगम के यहाँ की कश्ती है।

मीर साहब—अरे साहब जल्दी-जल्दी।

बेगम—रौनक़, पहले हार उठाओ।

रौनक़—लीजिये।

बेगम —बिस्मिल्लाह। [पहनाती है] लाग्रो इमाम जामिन भी बांध दूं।

रौनक़—लीजिये सरकार।

बेगम —[बांध कर] इमाम ज़ामिन की ज़ामिनी ।

मीर साहब—ग्रौर भी सब जल्दी-जल्दी बांध दो, देर हो रही है।

बेगम—तुमने फिर हाथ-पैर फुलाये ! ला रौनक़ ग्रौर कश्तियां जल्दी-जल्दी उठा।

रौनक़ —लीजिये, लीजिये, लीजिये।

बेगम—बिस्मिल्लाह। ऐहे यह बहू बेगम का कारचोब वाला इमाम ज़ामिन कैसा प्यारा प्यारा है ?

रौनक़—सरकार, यह शमशाद महल के यहां का हार देखिये गोटे का है ग्रौर इमाम ज़ामिन भी ग्रच्छा है।

बेगम—सरदार दुल्हन को तो देखो यह क्या सिल्क का इमाम ज़ामिन भेजा है। ग्रौर यह इसमें पैसा बँधा है।

रौनक़—नहीं सरकार ग्रशरफ़ी है, या शायद ग्रठन्नी हो।

बेगम —हां यह है इमाम ज़ामिन। सरदार दुल्हन देखें तो देखती रह जायें। क्या कहना है क़मर दुल्हन का।

मीर साहब—बस साहब हो गये सब इमाम ज़ामिन।

बेगम —ऐ मेरा इमाम ज़ामिन तो बंधवा लो।

मीर साहब—हां साहब, यह सबसे जरूरी है। ग्रौर हां बेगम, एक-एक इमाम ज़ामिन मिर्ज़ा साहब ग्रौर शेख साहब को भी भिजवा दो।

बेगम—ग्रब चले ये चोंचले लेके। मैं ग्रब कहां से लाऊँ इमाम ज़ामिन ?

मीर साहब—ग्ररे साहब किसी कपड़े में एक-एक रुपया बांध दो बस।

बेगम —ग्रच्छा मैं ग्रभी भेजती हूं।

मीर साहब—ग्रच्छा खुदा हाफ़िज़।

बेगम—ग्रल्लाह की ग्रमां [शरण]। इमाम ज़ामिन की ज़ामिनी।

दही मछली ।

रौनक़—मियाँ दही मछली ।

मीर साहब—अब तुम लोग जरा हट जाओ ।

शेख साहब—[बाहर से] अजी हज़रत तशरीफ़ लाइये ।

मीर साहब—भाई अन्दर आजाओ, मैं तैयार हूँ ।

[दरवाजा खुलता है, शेखसाहब और मिर्ज़ा साहब आते हैं, चाप ।]

शेख साहब—ख़ैर ख़ुदा करके आप तैयार तो हुए ।

मिर्ज़ा साहब—और जरा शान तो देखिये । मालूम होता है दूल्हा मियाँ आ रहे हैं ।

शेख साहब—ख़ैर दूल्हा न सही, हाजी साहब तो जरूर मालूम होते हैं इन इमाम जामिनों में ।

मीर साहब—भई क्या बताऊँ औरतें जो चाहें बना दें ।

शेख साहब—अच्छा तो अब बग्घी मँगवाइये ना । एक घण्टा बाक़ी रह गया है ।

मीर साहब—दौलत, अरे दौलत ।

[दौलत आता है ।]

दौलत—सरकार ।

मीर साहब—दौलत सब सामान तैयार है ?

दौलत—जी हाँ तैयार है कुल तीस अदद हैं, मगर···

मीर साहब—ताश की गड्डी, चौसर, शतरंज ये सब रख लिया है ?

दौलत—जी हाँ सरकार ये सब चीजें हैं मगर···।

मीर साहब--मगर क्या ? कुछ भूल गये ? तुम्हारे दिमाग़ में भूसा भरा है ।

दौलत— मैंने कहा सरकार कि···बटेरें हुजूर को याद करेंगी ।

मीर साहब—बटेरें ? खूब याद दिलाया, खूब याद दिलाया । भई उनके काबक साथ ले लो वर्ना वो वाक़ई हड़क जायेंगी ।

दौलत—बहुत अच्छा सरकार तो अब बत्तीस अदद हैं।

मीर साहब—कोई परवा नहीं। तुम अब दो बग्घियां फ़ौरन ले आओ।

दौलत—बहुत अच्छा सरकार। [जाता है।]

[दरवाज़ा खुलता है, रौनक़ आती है।]

रौनक—सरकार, बेगम साहब ने मिर्ज़ा साहब और शेख साहब के लिए इमाम ज़ामिन भेजे हैं और ये हार और कहा है कि जब से मिट्टू बेटे को आपके सिधारने की खबर हुई है वह बराबर टें टें कर रहा है।

मीर साहब—अरे भई यह तो बड़ी मुसीबत है। वाक़ई मिट्टू बेटे तो सख्त परेशान करेंगे सबको।

रौनक़—ऐ सरकार, वह तो अगर ज़रा देर भी सरकार को न देखे तो आफ़त मचा देता है।

मीर साहब—क्या राय है मिर्ज़ा साहब, जहाँ इतना सामान हुआ वहाँ एक पिंजरा और सही।

मिर्ज़ा साहब—जो राय-आली हो। मगर इतने सामान का तो महसूल पड़ जायेगा।

मीर साहब—तो भई तुम ही बताओ कौन-सी चीज़ ज़रूरत से ज्यादा है? बग़ैर पानदान के काम नहीं चल सकता, बग़ैर नाश्तेदान के कैसे चल सकता है और इसी तरह सब चीज़ें ज़रूरी हैं।

शेख साहब—वल्लाह मालूम होता है विलायत का सफ़र है।

मिर्ज़ा साहब—और क्या जितने आदमी विलायत जाते हैं वो सब तोते का पिंजरा और बटेर का काबक ले जाते हैं।

मीर साहब—तो भई मैं इन बेज़ुबानों की जान तो लूँगा नहीं चाहे जो कुछ भी हो।

शेख साहब—नहीं साहब हरगिज़ नहीं। बहरहाल अब सामान निकलवाना चाहिये बग्घियाँ आती ही होंगी।

मीर साहब—आपको तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत है ? दौलत आता ही होगा।

मिर्ज़ा साहब—अपना काम करने में भी कोई तकलीफ़ होती है ? यह आपने एक ही कही। वल्लाह है कि मैं सामान निकालता हूँ।

मीर साहब—अमां तुम्हें मेरी क़सम जो सामान उठाओ। यह भी कोई बात है।

[दरवाज़ा खुलता है, दौलत आता है।]

दौलत—सरकार बग्घियां हाज़िर हैं। एक-एक रुपये पर आई हैं।

मीर साहब—अच्छा तो समान रखवाओ ! और देखो, बाहर कोई औरत सामने न आने पाये और न कोई ऐसा-वैसा आदमी।

दौलत—क्या मजाल है सरकार। मैं रास्ता बन्द कराये देता हूँ।

मीर साहब—अच्छा तो भाई मिर्ज़ा, मैं एक मर्तबा ज़रा घर में हो आऊँ।

शेख़ साहब—बस तो फिर गाड़ी मिल चुकी।

मीर साहब—अमां अभी आया मैं। बस सामान रखा गया कि मैं आ गया।

मिर्ज़ा साहब—हां-हां, आप ज़रूर हो आयें। मगर ज़रा जल्दी कीजियेगा।

मीर साहब—बस मैं अभी आया, तुम सामान रखवादो। [जाते हैं।]

मिर्ज़ा साहब—देखो दौलत कोई चीज़ रह न जाये।

दौलत—क्या मजाल है सरकार। मगर एक बग्घी में सब सामान ही आयेगा।

मिर्ज़ा साहब—बस तो एक में हम सब आ जायेंगे।

शेख साहब—मगर यार तोते का पिंजरा और बटेरों का काबक मीर साहब के पास ही रखना।

मिर्ज़ा साहब—हां, यह भी अच्छी दिल्लगी रहेगी।

[दरवाज़ा खुलता है, मीर साहब आते हैं।]

मीर साहब—लीजिये जनाब मैं आ गया।

मिर्ज़ा साहब—बस तो बिस्मिल्लाह कीजिये। [दौलत को छींकें आती हैं।]

मीर साहब—यह कौन था? दौलत ना? लाहौल वला क़ूवत! आओ भई मिर्ज़ा ज़रा बैठ जाओ शगुन खराब हो गया। एक-एक पान खालो फिर चलेंगे। इस बदतमीज़ दौलत को देखो। इसी वक्त बदशगुनी सूझी थी।

शेख साहब—अच्छा खैर एक-एक पान खा लीजिये। [पैरों की चाप] मिर्ज़ा साहब लीजिये मेहतरानी भी आ गई।

मेहतरानी—अल्लाह सलामती रखे, ड्योढ़ी आबाद।

दौलत—हट हट, सामने से हट। सरकार सिधार रहे हैं।

मीर साहब—खैर यह भी अच्छा हुआ। बहरहाल अब पान खाकर चलते हैं।

दौलत—सरकार, पान हाजिर हैं।

मीर साहब—लो भई पान खा लो। [सब खाते हैं] लो, उठो अब।

शेख साहब—बिस्मिल्लाह।

मिर्ज़ा साहब—अला अल्लाह।

मीर साहब—चल दौलत बाहर से सब को हटा दे।

दौलत—हुज़ूर बाहर कोई नहीं, तशरीफ़ ले चलें।

[सब चलते हैं, बिल्ली की आवाज़ आती है। सब रुक जाते हैं।]

मीर साहब—हा कमबख्त रास्ता काट गई।

मिर्ज़ा साहब—यह तो बहुत बुरा हुआ कि रास्ता काट गई।

मीर साहब—लौट आओ भाई। शेख साहब, यह शगुन निहायत मनहूस होता है। [दरवाज़ा खुलता है, रौनक़ आती है।]

रौनक़—सरकार, बेगम साहबा कह रही हैं कि बिल्ली रास्ता काट गई है। अब मैं हरगिज़ न जाने दूंगी।

मीर साहब—है तो वाक़ई यह बहुत बुरा, मगर मुक़द्दमे का क्या होगा।

रौनक़—सरकार जायदाद आप पर से सदक़े की। मगर जब बिल्ली रास्ता काट जाये तो जाना न चाहिये।

मीर साहब—वाक़ई अब तो मेरे क़दम भी नहीं उठते।

शेख साहब—हजरत यह सब वहम हैं। बिल्कुल औरतों की बातें हैं।

मीर साहब—ऐं भई शेख साहब, यह क्या कह रहे हो? अमाँ यह क्या कह रहे हो? यानी बिल्ली रास्ता काट जाये और तुम उसको मामूली बात समझो।

मिर्जा साहब—नहीं साहब यह कोई बात नहीं है। ऐसी हालत में सफ़र हरगिज़ नहीं हो सकता।

मीर साहब—भई शेख साहब, मैं तुम से सच कहता हूँ। तुम्हारे सरे अजीज़ की क़सम अब्बा जान मरहूम के एक दोस्त घोड़े पर सवार थे और जंगल का रास्ता था कि बिल्ली रास्ता काट गई। बस फिर कुछ न पूछो कि घोड़े का एक क़दम आगे बढ़ा ही था कि उसको ठोकर लगी और सवार सर के बल गिरा।

मिर्जा साहब—ऐ है बड़ी चोट आई होगी जनाब।

मीर साहब—अमाँ चोट? यक़ीन जानो कि तमाम पेशानी लहू-लुहान हो गई।

शेख साहब—इत्तिफ़ाक़न हो गया ऐसा। यह क्या जरूरी है कि हर मर्तबा ऐसा ही हो।

रौनक़—ऐ वाह मियाँ अल्लाह न करे ऐसा हो। मेरा तो सुनकर ही कलेजा धड़क रहा है।

मीर साहब—भई शेख साहब, बाज़ वक्त तो तुम निहायत नासमझी की बातें करते हो गोया यह शगुन और बदशगुनी कोई चीज ही नहीं।

शेख साहब—साहब, मैं तो इन बातों को मोहमल समझता हूँ।

मिर्ज़ा साहब—भाई साहब, यह तो न कहिये ! अलबत्ता यह कहिये कि आप कुछ नई रोशनी के आदमी होकर रह गये हैं।

मीर साहब—अमां तुम्हें मेरी क़सम ज़रा देखो तो शेख़ साहब की ढिटाई कि बिल्ली रास्ता काट जाये और यह शेर डटा रहे।

मिर्ज़ा साहब—ख़ैर सफ़र तो मेरी नाचीज़ राय में मुनासिब नहीं है, अलबत्ता ख़याल है तो सिर्फ़ यह कि मुक़द्दमे का क्या होगा।

रौनक़—ऐ मियां चूल्हे में गया मुक़द्दमा। अल्लाह जान की सलामती रखे तो ऐसे सैकड़ों मुक़द्दमे होंगे।

मीर साहब—भई वल्लाह यह भी एक ही रही। अमां सुनते हो मिर्ज़ा इनकी रौनक़ की दुआ कि ऐसे-ऐसे सैकड़ों मुक़द्दमे मेरे लिए मांग रही हैं।

रौनक़—ऐ तो क़ुर्बान जाऊँ मुझे क्या मालूम ?

मीर साहब—तो भई मिर्ज़ा अब तुम ही बताओ कि इस मुक़द्दमे का क्या किया जाये ?

मिर्ज़ा साहब—हज़रत, मेरी अक़्ल ख़ुद हैरान है।

[दरवाज़ा खुलता है, दौलत आता है।]

दौलत—सरकार, तो क्या सामान उतार लिया जाये ?

मीर साहब—सामान तो ख़ैर ज़रूर उतरेगा ख़्वाह मुक़द्दमा रहे या जाये।

दौलत—तो सरकार बग्घी वालों को तो किराया देना ही पड़ेगा।

मीर साहब—हां हां तो किसने कहा है कि न दो।

मिर्ज़ा साहब—मेरी नाक़िस राय में तो हाकिम को तार दिया जाये।

मीर साहब—आख़िर क्या तार दिया जाये ?

शेख़ साहब—यही कि बिल्ली रास्ता काट गई और मुलाज़िम को छींक आ गई।

मिर्ज़ा साहब—नहीं साहब, यह तार दिया जाये कि गाड़ी छूट गई।

शेख़ साहब—क़िब्ल-ए-आलम, यह भी ख़बर है कि जहां आपको जाना

है वहाँ दिन भर में खुदा झूठ न बुलाये तो हर घण्टे गाड़ी छूटती है।

मीर साहब—ग्रमां तो कुछ ग्रौर सोचो।

शेख साहब—तो ग्राखिर इसमें क्या हर्ज है कि ग्राप ग्रब दूसरी गाड़ी से चलें ?

मीर साहब—भाई, बेगम ग्रब हरिगज न जाने देगी।

शेख साहब—तो यह समझ लीजिये कि जायदाद का मामला है कहीं खुदा-न-ख्वास्ता जायदाद खटाई में न पड़ जाये।

मीर साहब—क्या ग्रर्ज करूं कुछ समझ में नहीं ग्राता।

[रौनक़ ग्राती है।]

रौनक़—सरकार, बेगम साहबा कहती हैं कि ग्रब कुछ भी होजाये मैं हरगिज़ न जाने दूंगी।

मीर साहब—ग्ररे साहब तो मैं कहाँ जा रहा हूँ।

मिर्ज़ा साहब—तो ग्रब फ़र्माइये किस मज़मून का तार दिया जाये ?

मीर साहब—मेरे ख्याल में तो यही तार दे दो कि मजबूरन सफ़र मुल्तवी कर दिया है।

शेख़ साहब—जनाबे वाला इसका ग्रसर मुक़द्दमे पर क्या पड़ेगा ?

मिर्ज़ा साहब—मगर भई मजबूरी की वजह से सफ़र मुल्तवी किया है ना ?

शेख़ साहब—क्या मजबूरी है ग्राखिर ? यही ना कि चन्द वहम घेरे हुए हैं।

मीर साहब—भई शेख साहब, तुम तो वल्लाह है कि इन बातों को फिर वहम कह रहे हो। यानी बिल्ली रास्ता काट जाये ग्रौर वहम।

मिर्ज़ा साहब—नहीं साहब, यह वहम नहीं बल्कि एहतियात शर्त है। ग्राखिर हमारे बुज़ुर्ग क्या करते थे ?

मीर साहब—मैं ग्रापसे ग्रर्ज़ करूं कि हमारे बुज़ुर्ग तो इन्हीं खयालात

की वजह से सफ़र ही को मुनासिब न समझते थे।

[दरवाज़ा खुलता है और दौलत आता है।]

दौलत—सरकार ग़ज़ब हो गया ! एक बग्घी का घोड़ा निकल कर भागा है मय तमाम सामान के और बटेरों के काबक भी उसी बग्घी पर हैं। [मिर्ज़ा साहब और शेख साहब दरवाज़े की तरफ़ लपकते हैं।]

मीर साहब—इलाही खैर ! खुदा मेरी बटेरों को महफ़ूज़ रखे ! ज़रा जल्दी देखो भई। अमां ज़रा जल्दी जाओ तो।

रौनक़—वह तो मुआ शगुन ही खराब हो गया था। इस मुए नकटे दौलत को भी इसी वक्त छींक आनी थी।

दौलत—ज़रा ज़ुबान संभाले हुए। नकटा मैं क्यों होता, जो कहे वह खुद और उसकी सात पुश्त।

रौनक़—देखिये सरकार, यह मुआ मुंह भर-भर कर मेरी पुश्तों को कह रहा है।

मीर साहब—अरे साहब, यह लड़ाई का वक़्त नहीं है। खुदा को याद करो !

रौनक़—सरकार।

दौलत—सरकार।

मीर साहब—चुप रहो साहब, चुप रहो।

रौनक़—सरकार देखिये ना यह मुआ ··।

मीर साहब—खुदा को याद करो। मेरी बटेरें इस वक्त सख्त मुसीबत में हैं।

[दरवाज़ा खुलता है, शेख साहब और मिर्ज़ा साहब आते हैं।]

मिर्ज़ा साहब—लीजिये हज़रत अपनी बटेरें। मैंने जाते ही घोड़े को पकड़ लिया।

मीर साहब—भई वल्लाह कमाल किया। अमां ज़रा देखो तो बटेरों का दिल कैसे धड़क रहा है। मगर वल्लाह है कि खुदा ने हम

लोगों को कैसा बचाया। शुक्र है हम बग्घी पर सवार न थे।

शेख़ साहब—सिर्फ़ आपकी सुराही गिर पड़ी है। बाकी सब ख़ैरियत है।

मीर साहब—ख़ैर भई सुराही गई तो जाये। सबकी जानों का सदक़ा उतरा।

शेख़ साहब—लाहौल वला क़ूवत कैसा हंगामा हुआ है बैठे बिठाये।

मीर साहब—ऐसा वैसा हंगामा। ज़रा मेरा कलेजा तो देखो अब तक बेक़ाबू है। दौलत, ज़रा शर्बते-अनार तैयार करा और भई मिर्ज़ा मैं ज़रा महल में हो आऊँ ताकि बेगम को इत्मीनान हो।

मिर्ज़ा साहब—तो हम लोग इजाज़त चाहते हैं।

मीर साहब—अच्छा भई ख़ुदा हाफ़िज़।

शेख़ साहब—आदाब बजा लाता हूँ।

मिर्ज़ा साहब—तसलीमात अर्ज़ करता हूँ।

मीर साहब—ख़ुदा हाफ़िज। ख़ुदा हाफ़िज।

[पैरों की चाप दूर जाती सुनाई देती है।]

झूठा ख्वाब

[रात के सन्नाटे में सिर्फ़ कुत्तों के भौंकने की आवाज़, कभी-कभी चौकीदार की आवाज 'जागते रहो' झुम्मन अपने घर में खर्राटे लेकर सो रहा है कि यकायक घण्टा दो बजाता है और झुम्मन सोते ही में रोना शुरू कर देता है। उसकी बीवी उसको होशियार करती है।]

झुम्मन की बीवी—लड्डन के अब्बा ! ऐ लड्डन के अब्बा ! अरे जरा होशियार तो हो। यह कैसा रोना-धोना मचा रखा है ?

झुम्मन—[नींद में रोते-रोते, जरा होशियार होकर] एँ·· ऐं··· कौन है ? लड्डन की मां, नहीं मौत का फ़रिश्ता। मुझको माफ़ करो। मैं बड़ा गुनहगार हूँ। मेरा बच्चा छोटा है और ···और मेरा बहुत सा रुपया गाहकों पर बाक़ी है। मुझे माफ़ करो।

झुम्मन की बीवी—यह क्या बक रहे हो ? जरा उठो तो सही।

झुम्मन—एं तुम हो, हैं तुम नहीं हो। मगर तुम गधी हो।

झुम्मन की बीवी--क्या कोई डरावना ख्वाब देखा है तुमने ? रात को खाना हजम नहीं हुआ शायद।

झुम्मन—लड्डन की माँ, तुम मेरे पास बैठ जाओ। लड्डन को मेरे पास लिटा दो, मेरे पास लिटा दो। मेरे पास से न हटो। बस अब मैं थोड़ी देर का मेहमान हूँ। तुमको खुदा के सुपुर्द

किया। लड्डुन का खयाल रखना और···ज़रा ध्यान देकर सुनो कि जिन-जिन गाहकों पर मेरा रुपया बाक़ी है सब पाई-पाई वसूल कर लेना। किसी पर बाक़ी न रहने पाये।

झुम्मन की बीवी—यह तुम क्या कह रहे हो ? कुछ बताओ तो सही बात क्या है ? मेरा दम उलझ रहा है, आखिर तुमको सोते-सोते हुआ क्या है ?

झुम्मन—कुछ नहीं हुआ, बस वक़्त की बात थी। वक़्त आगया, कुछ देर और मुँह से ये बोल निकल रहे हैं। साँस चल रही है और हमारा तुम्हारा साथ फिर हम कहाँ और लड्डुन की माँ तुम कहाँ।

झुम्मन की बीवी—[चीख मारकर रोती है] हाय मैं लुट गई। मेरा भरा घर उजड़ गया ! मैं कहीं की न रही।

[रोने की आवाज़ सुनकर शुबराती और खैरातन दौड़ पड़ते हैं]

शुबराती—बेगम साहब, बेगम साहब क्या हुआ ? अरे क्या हुआ ?

खैरातन—अरे मियाँ को तो देखो।

झुम्मन—लड्डुन की माँ सब्र से काम लो, रोना-धोना छोड़ो। देखो मैं भी इस आखिरी वक्त में अगर घबरा गया तो कर्ज़दार गाहकों का हिसाब न समझा सकूँगा और सब रुपया डूब जायेगा।

झुम्मन की बीवी—अरे जब तुम ही न हुए तो मैं हिसाब समझकर क्या करूँगी ? [फिर रोती है] हाय मेरा तो कोई भी नहीं है।

शुबराती—बेगम साहब, बात क्या है आखिर ?

खैरातन—मियाँ आखिर हुआ क्या ?

झुम्मन—बस कुछ नहीं, जो इस दुनिया में आया है उसे एक दिन जाना भी है। मेरा भी वक्त आ गया है इसलिए मैं कहता हूँ कि लेन-देन का हिसाब समझ लो और यह हैं कि रो रही हैं।

शुबराती—बेगम साहब, देखिये न मियाँ ठीक तो कह रहे हैं। रोना तो अब ज़िन्दगी भर का है। मगर हिसाब तो समझ लीजिये।

खैरातन—हाँ बेगम साहब, इसी हिसाब में हम लोगों की तनख्वाह भी है। अब की मैंने सिर्फ़ एक रुपया लिया है।

शुबराती—अरी छोड़ अपना हिसाब। हमारा मालिक तो दुनिया से उठ रहा है और तू है कि अपना हिसाब समझा रही है।

झुम्मन—हाँ। अबकी इसने एक रुपया पेशगी लिया है और आठ आने की चायदानी तोड़ी है। इस हिसाब से डेढ़ रुपया काट लेना और शुबराती के हिसाब में....[झुम्मन की बीवी रोती है।]

झुम्मन की बीवी—[रोते हुए] हाय मुझ पर किसको छोड़ रहे हो? ऐ लड्डन के अब्बा, तुम क्या करने वाले हो? [रोती है।]

झुम्मन—छोड़ो भी रोना। अरे साहब मर तो रहा हूँ मैं और रोती हो तुम। मैं कहता हूँ कि दूकान का खाता लाकर हिसाब समझ लो। तुम चाहती हो कि मैं इत्मीनान से मर भी न सकूँ?

शुबराती—जाते-जाते इस वक्त मियाँ की कोई बात न टालिये।

झुम्मन की बीवी—अरे यह तो बताओ कि तुमको हुआ क्या है? कुछ दवा-दारू तो कर लें।

झुम्मन—फिर वही, अब दवा-दारू का खर्च ही बढ़ाओगी। यह खर्च बढ़ाकर मैं जानता हूँ कि तुम मुझे मरने भी न दोगी।

झुम्मन की बीवी—किसी डाक्टर ही को दिखा दो। आखिर तुमको सोते-सोते हुआ क्या? यह कौन सी मुई बीमारी शुरू हो गई?

झुम्मन—डाक्टर, फीस, दवा की क़ीमत, और उधर दूकान पर सन्नाटा, कारोबार चौपट। खुदा के लिए यह खर्च न बढ़ाओ। अभी मरने का खर्च पड़ा है सब।

शुबराती—मियाँ मरने का खर्च तो दवा-दारू से भी ज्यादा होगा।

झुम्मन—मैं जानता हूँ कि मरने का खर्च ज्यादा है मगर मरना तो अब टल नहीं सकता। ठीक चार बजे दम निकल जायेगा।

खैरातन—मियाँ दिन को चार बजे या रात को ?

झुम्मन—अरे दिन क्या और रात कैसी ? बस अब थोड़ी देर में।

झुम्मन की बीवी—[फिर चीख-चीख कर रोती है] अरे मेरे अल्लाह यह तूने क्या किया ? हाय मैं तो कहीं की न रही। अरे मेरा लड्डन अब किसको अब्बा कहेगा ? कौन उसके सर पर हाथ रखेगा ?

खैरातन—[साथ-साथ रोती है] हाय मेरे अल्लाह ! तुम यहाँ बीमार भी नहीं हुए। अरे तुमने मेरी बेगम साहब की माँग उजाड़ दी। हाय उनकी सुहाग की चूड़ियाँ !

शुबराती—हाय हाय ! कैसे अच्छे आदमी थे तुम। मियाँ तुमने मुझ को डाँटा तक नहीं कभी।

खैरातन—मगर मियाँ यह तो बताइये कि आखिर तकलीफ़ क्या है ?

शुबराती—कहीं दर्द उठा है आपके ?

झुम्मन—न दर्द है, और न कोई तकलीफ़। बस यही खयाल है कि रुपया गाहकों पर बहुत फैला हुआ है। वसूल हो जाता तो कोई बात नहीं थी मरना तो एक दिन है ही।

झुम्मन की बीवी—तो तुमने यह कैसे समझ लिया कि चार बजे दुश्मनों का दम निकल जायेगा ?

झुम्मन—अभी दादा मियाँ तशरीफ़ लाये थे।

शुबराती—दादा मियाँ ? वह तो कब के मर चुके हैं।

झुम्मन—हाँ हाँ, उनका इन्तिक़ाल हो चुका है। मगर आये थे और अब्बाजान मरहूम भी उनके साथ थे।

शुबराती—आपके अब्बाजान ? उनको भी तो आप कहते थे कि मर चुके हैं ?

झुम्मन—हाँ हाँ मर चुके हैं, मगर अभी दोनों आये थे। यहीं खड़े

थे इसी जगह।

शुबराती—मियाँ, सब दरवाज़े बन्द हैं और कुत्ता खुला हुआ है। फिर भला ये दोनों कैसे आगये ?

झुम्मन—कुछ भी हो मगर आये थे। दादा मियाँ ने मेरे सर पर हाथ फेरा और कहा कि 'बेटा, छोड़ इस दुनिया को और चार बजे मुझसे आकर मिल जा। अभी दो घण्टे के बाद इसी रात में 'बस अभी थोड़ी देर में।'

झुम्मन की बीवी—[फिर रोती है] ऐ दादा मियाँ तुमने क्या किया ? अरे पहले मुझको बुलाते। मुझको कहीं का न रखा।

झुम्मन—और अब्बा जान ने कहा कि देखो झुम्मन, जब मैं मरा था तो किसी पर एक पैसा भी छोड़कर नहीं मरा था। मगर पैसा बहुत फैला हुआ है। अपनी बीवी को सब हिसाब समझा देना नहीं तो तेरी जान मुश्किल से निकलेगी।

शुबराती—अरे तो यह कहिए मियाँ आपने ख्वाब देखा है।

झुम्मन—हाँ ख्वाब तो देखा है। मगर दादा मियाँ और मेरे अब्बा जान मरहूम ख्वाब में भी झूठ नहीं बोल सकते।

झुम्मन की बीवी—मगर तुम कुछ बीमार भी नहीं हो।

शुबराती—ऐसे ख्वाबों का क्या भरोसा ? अभी मैंने तीन-चार दिन हुए ख्वाब देखा था कि जैसे मैं बादशाह हो गया हूँ, मगर अभी तक तो हुआ नहीं हूँ।

खैरातन—ऐ मियाँ मैं तो रोज़ जाने क्या-क्या ख्वाब देखा करती हूँ और सवेरे उठकर भूल जाती हूँ। आज तक तो कोई बात पूरी हुई नहीं।

शुबराती—मियाँ, मुझे तीन दिन से बुखार आ रहा है, मगर मैं तो जिन्दा रहूँगा। आपको तो छींक तक नहीं आई।

झुम्मन—मैं तो खुद खर्च बढाना नहीं चाहता, मगर मजबूरी भी तो है।

झुम्मन की बीवी—ऐ मेरे अल्लाह तू इनके ख्वाब को झूठा कर दे।

झुम्मन—फिर वही बकवास ! अरे साहब मेरे अब्बाजान मरहूम तो खैर कभी-कभी हँसी में झूठ बोल भी लेते, दादा मियाँ तो बड़े बुजुर्ग थे, वे कैसे झूठ बोल सकते हैं ? और ख्वाब कैसे झूठा हो सकता है ?

खैरातन—यह तो ठीक है मियाँ। मगर आप यह खयाल दिल से निकाल रखिये।

झुम्मन—क्या बकती है फ़िज़ूल ? यानी मैं मरने को बैठा हूँ और तू कहती है यह खयाल दिल से निकाल दूँ।

[घड़ी टन-टन-टन तीन बजाती है।]

झुम्मन—तो साहब तीन भी बज गए। अब सिर्फ़ एक घण्टा बाक़ी रह गया।

झुम्मन की बीवी—हाय मैं क्या करूँ ? ऐ मेरे अल्लाह यह कैसे बचेंगे ?

खैरातन—घबराओ नहीं। कहीं मियाँ के भी हाथ-पैर फूल न जायें।

झुम्मन—अरे कोई दौड़कर दूकान से खाता उठा लाये।

झुम्मन की बीवी—अरे कोई डाक्टर ही को बुला दो।

झुम्मन—नहीं-नहीं, डाक्टर हरगिज़ नहीं। रात को दुगनी फ़ीस जायेगी और जान भी न बचेगी।

झुम्मन की बीवी—ऐ फ़ीस जायेगी तो जाये दुगनी, मुई यह तो अरमान न रहेगा कि इलाज न किया।

झुम्मन—अरे साहब, जब मालूम है कि जान न बचेगी तो रुपया खर्च करने से फ़ायदा क्या है ?

शुबराती—ठीक तो है बेगम साहब जब जान न बचेगी तो रुपया ही बचाइए।

खैरातन—सवा तीन बज गए।

झुम्मन—खाता नहीं आया अब तक ? अच्छा मैं खुद जाता हूँ।

झुम्मन की बीवी—नहीं तुम न जाओ, मैं लाती हूँ।

झुम्मन—ख़ैरातन से कहो वह ले आये और जब तक तुम लिखो मैं ज़ुबानी लिखाता हूँ।

शुबराती—बोलिये मियाँ। मैं लिखता हूँ, आप बोलिए।

झुम्मन—अरे तू न जाने क्या लिखेगा। तुम ही लिखो लड्डन की माँ।

शुबराती—नहीं मियाँ मैं याद करता जाऊँगा, आप बताइये तो।

झुम्मन—अरे यह याद करने की चीज़ नहीं। अगर कोई रक़म रह गई तो क्या मैं फिर आऊँगा तुमको याद दिलाने? एक-एक रक़म लिख लो।

झुम्मन की बीवी—[रोकर] अरे जब तुम ही न हुए तो रक़म क्या होगी?

झुम्मन—रक़म क्या होगी? यह भी एक ही रही। मेरी ज़िन्दगी भर की कमाई है अगर किसी पर रुपया रहा तो मुझसे क़ब्र में कैसे लेटा जायगा?

ख़ैरातन—यह लीजिए मियाँ, यही है न दुकान का खाता? मगर अब साढ़े तीन बज गए हैं।

झुम्मन—साढ़े तीन? लड्डन की माँ साढ़े तीन बज गए हैं, आधा घण्टा रह गया है। रखो अब इस खाते को तुम खुद समझ लेना। मगर मेरा कफ़न मोल न मँगाना। छम्मन बज़ाज पर दस रुपये बाक़ी हैं उससे उसी हिसाब में मंगा लेना। और अबू साहब पर बीस रुपये बाक़ी हैं उससे फ़ौरन मँगा कर जनाज़े का इंतिज़ाम करना।

झुम्मन की बीवी—[चीख कर] अरे तुम्हारा कफ़न! हाय तुम्हारा जनाज़ा! ऐ मेरे अल्लाह यह दिन देखने के लिए क्यों मुझे ज़िंदा रखा?

झुम्मन—अच्छा अब तुम मेरे पास बैठ जाओ। लड्डन को लाओ जी भर कर प्यार कर लूं। उसको हिसाब अच्छी तरह पढ़ा

देना। जोड़ और ज़रब पर ज्यादा ज़ोर देना, यही मैंने भी सीखा था।

झुम्मन की बीवी—अरे वह सवेरे उठकर हर तरफ़ तुमको ढूंढने लगा तो मैं उसको कहाँ से दूंगी ? [रोती है] मेरा बेज़ुबान बच्चा कैसा तुमको याद करेगा। हाय क्या थोड़ी देर में यह यतीम हो जायेगा ?

झुम्मन—[खुद भी रोता है] हाय ! मैंने अपने लड्डन की कोई खुशी न देखी।

शुबराती—मियां आप खुद न रोइये। लोग कहेंगे अपनी मौत पर खुद रोये।

खैरातन—अल्लाह करे यह निगोड़ा ख्वाब झूठा निकले।

झुम्मन—ख्वाब झूठा नहीं हो सकता। अब्बा जान मरहूम मरने के बाद झूठ नहीं बोल सकते। दादा मियां ज़िन्दगी भर झूठ नहीं बोले।

शुबराती—खैर आपके अब्बा जान तो चाहे झूठ बोल भी दें मगर दादा मियां ने भी तो कहा है।

झुम्मन—यही तो मैं भी कहता हूं। खैर अब झूठ सच का फ़ैसला हुआ जाता है। थोड़ी देर और बाक़ी है।

झुम्मन की मां—[सिसक-सिसक कर रोती है] ऐ मेरे मौला ! तू इनके ख्वाब को झूठा कर दे।

झुम्मन—आखिरी तमन्ना यह रह गई कि क़र्जदार गाहकों से रुपया वसूल न कर सका।

खैरातन—लीजिये पौने चार बज गये। हाय पन्द्रह मिनट बाक़ी रह गये।

झुम्मन—अच्छा तुम सबको खुदा के सुपुर्द किया। लड्डन की मां तुम मेरा ग़म न करना। दुकान बन्द न होने पाये। किसी पर एक पैसा भी न रहे। कल ही बिल्टी छुड़ा लेना नहीं डेमरेज

पड़ेगा और मेरी रूह को तक़लीफ़ होगी।

शुबराती—नहीं मियाँ आप इत्मीनान से मरिये। जैसा आप कहते हैं सब हो जायेगा।

झुम्मन—मेरे मरने की खबर पाकर ससुराल में मेरी बच्ची का क्या हाल होगा। हाय उसने मुझे देखा भी नहीं!

खैरातन—और मियाँ आपकी बहन।

शुबराती—और हुज़ूर आपके भाई।

झुम्मन—लड्डन की माँ, सबसे होशियार रहना। मुक़द्दमेबाज़ी होगी। मेरा रुपया सब लूटने की कोशिश करेंगे।

शुबराती—मियाँ, मैं कोई अच्छा-सा वकील करूँगा।

झुम्मन—मगर फ़ीस कम देना। वह जो मोटे से वकील साहब हैं उन पर मेरा रुपया बाक़ी है। उनसे कहना मुक़द्दमा लड़ देंगे।

झुम्मन की बीवी—मुक़द्दमा गया चूल्हे में। वो लोग सब रुपया ले लें, मगर तुम बच जाओ।

झुम्मन—अरे यह क्या कर रही हो? खुदा के लिए मेरा मरना दूभर न करो। किसी को रुपया न देना, एक पैसा भी नहीं। अच्छा अब मैं सीधा-सादा लेटता हूँ, तुम मेरे पास से न हटना और देखो फिर कहे देता हूं कि जनाज़े पर ज्यादा रुपया खर्च न करना।

झुम्मन की बीवी—अरे ये बातें ज़ुबान से न निकालो। [रोती है]

झुम्मन—ज़रा शुबराती और खैरातन को हटा दो।

[शुबराती और खैरातन चले जाते हैं।]

झुम्मन—लड्डन की माँ मेरे क़रीब आकर बैठो।

झुम्मन की बीवी—कहो क्या कहते हो?

झुम्मन—नहीं साहब अपने कान क़रीब लाओ.......हाँ यूँ.....
देखो अन्दर वाली कोठरी के पच्छिम की तरफ़ कोने में एक फ़ुट ज़मीन खोदना उसके नीचे एक हाँडी निकलेगी हाँडी।

हाँडी में अशरफ़ियां और कुछ सोना है, और सुनो, कमरे में अलमारी के बीच के तख्त की दीवार खोदना तो ईंटों के पीछे कुछ नोट और कुछ प्रोनोट मिलेंगे। यह सब अच्छी तरह समझ लो और यह लो तिजोरी की कुञ्जी। बस अब पांच मिनट रह गए हैं। दुकान का खयाल रखना।

झुम्मन की बीवी—अरे मेरे अल्लाह तू सब कुछ कर सकता है। तू इनके ख्वाब को झूठा कर दे।

झुम्मन—इधर आओ लड्डन की मां मेरा कहा-सुना माफ़ कर दो।

झुम्मन की बीवी—हाय तुमने तो मुझको भी कभी कुछ कहा-सुना नहीं है। [रोती है] तुम ही मुझ को माफ कर दो। [फिर रोती है।]

झुम्मन—लड्डन की मां, जरा मेरे लड्डन को दिखा दो।

झुम्मन की बीवी—[रोती है] मेरे अल्लाह, मैं अब क्या करूँ ?

झुम्मन—लड्डन की माँ। मुझे माफ़ कर दो।

[झुम्मन की बीवी लगातार रोती है।]

झुम्मन—ज़रा सा पानी पिला दो। दो मिनट और इन दो मिनट दो मिनट......।

झुम्मन की बीवी—[रोते हुए] लो पानी, यह आखिरी पानी भी पीलो।

झुम्मन—अच्छा लड्डुन की माँ रुख्सत।

झुम्मन की बीवी—नहीं अभी आधा मिनट बाक़ी है।

झुम्मन—मैं आंखें बन्द करके खुद ही क्यों न मौत के क़ायदे से लेट जाऊँ ? लड्डुन की मां अब सब्र से काम लो। रुख्सत लड्डुन की मां। रुख्सत लड्डुन की मां, रुख्सत।

[घड़ी टन-टन-टन-टन चार बजाती है। घर में कुहराम मच जाता है। झुम्मन की बीवी, शुबराती और खैरातन सब अपनी-अपनी आवाज़ में रोते हैं। शोर सुनकर मुहल्ले वाले भी जमा हो जाते हैं और सब पर झुम्मन की नावक्त मौत का असर होता है।]

एक मुहल्ले वाला—हाय क्या नेक जवान था।

दूसरा मुहल्ले वाला—बड़ा शरीफ़, बिल्कुल अल्ला मियाँ की गाय।

तीसरा मुहल्ले वाला—जैसे मुँह से बोलना ही न जानता था। फिर हरेक के दुख-दर्द का शरीक।

चौथा मुहल्ले वाला—कल ही की बात है मुझसे कह रहा था कि तुम लड़के की शादी करो, मैं दुकान से सामान क़र्ज़ दे दूंगा।

पांचवा मुहल्ले वाला—आखिर वह बीमार क्या हुआ ग़रीब ?

झुम्मन की बीवी—अरे न कुछ बीमार, न कोई बीमारी। [रोती है] दो बजे रात को ख़्वाब देखा, [रोती है] दादा मियाँ और अब्बा जान को देखा कि बुला रहे हैं। [रोती है] आखिर उन्होंने बुला लिया। [सब मिलकर रोते हैं।]

शुबराती—ठीक चार बजे दम निकला।

खैरातन—दादा मियाँ ने ख़्वाब में भी वक़्त बताया था।

मुहल्ले वाला—हाँ साहब, नेक आदमी योंही मरते हैं। वह जन्नती था जन्नती।

झुम्मन की बीवी—अरे मेरे लिए तो दुनिया जहन्नुम हो गई। [रोती है] मैं तो समझी थी कि ख्वाब झूठा होगा [रोती है] मगर जो ख़्वाब में बताया था वही होकर रहा। [रोती है]।

एक मुहल्ले वाला—अब सब्र करो बहन। रोने को तो वक़्त पड़ा है, मगर अब कफ़न दफ़न का इन्तिज़ाम करो।

शुरताबी—यही तो मैं सोच रहा था कि बेगम साहब रुपया निकालें तो मैं सामान करूँ।

एक मुहल्ले वाला—एक आदमी को फ़ौरन क़ब्रिस्तान भेजो क़ब्र खुदवाये।

शुबराती—वहाँ भी तो रुपया देना होगा।

मुहल्ले वाला—उठो बहन अब शुबराती को रुपया दो। देर करने से क्या फ़ायदा ?

झुम्मन की बीवी—लो यह कुंजी और जो चाहो करो। मुझसे इस वक़्त कुछ न होगा। [रोती है]

खैरातन—[चीखकर] अरे अरे, देखो तो मियाँ ने आँखें खोल दीं।

झुम्मन—लाओ इधर कुञ्जी। [सब चीख मारकर भागते हैं और झुम्मन खुद ही बड़बड़ाता है।] मरना भी मुश्किल कर दिया है। अगर सचमुच मर गये होते तो औरत कुंजियाँ शुबराती के हवाले कर देती। वह तो कहिये कि अभी तक मौत नहीं आई। शायद यह घड़ी कुछ तेज़ है।

झुम्मन की बीवी—[सहमी हुई आवाज़ में] झुम्मन के अव्वा!

झुम्मन—क्या है जी, कुंजियाँ इधर लाओ।

झुम्मन की बीवी—तो क्या तुम जिन्दा हो?

झुम्मन—अगर चार बजे हैं तो मर चुका हूँ और अगर घड़ी तेज़ है तो ज़िंदा हूँ। मगर अब कुंजियाँ लेकर मरूँगा।

झुम्मन की बीवी—क्या सचमुच तुम ज़िन्दा हो? तुम ज़िन्दा हो। वेशक ज़िन्दा हो। तुम्हारा ख्वाब झूठा था। वेशक झूठा था। चार बज चुके अब तुम ज़िन्दा हो गये।

खैरातन—बेगम साहब पास न जाइयेगा।

शुबराती—हाँ पहले इनके पैर देख लीजिये कि फिरे हुए तो नहीं हैं।

झुम्मन—अबे नामाक़ूल, तो क्या मैं भूत हो गया हूँ?

खैरातन—भाग आइये बेगम साहब, भाग आइये।

झुम्मन की बीवी—तुम ज़िन्दा हो। अच्छा मेरा नाम लेकर पुकारो।

झुम्मन—लड्डुन की माँ, ऐ लड्डन की माँ लो बस......।

शुबराती—बेगम साहब, सुना आपने? यह आवाज़ नाक से निकली है।

झुम्मन—नाक से आवाज़ निकली है के बच्चे, क्या मैं मरने के बाद पीपल के दरख्त से उतरा हूँ कि नाक से आवाज़ निकालूंगा।

खैरातन—बेगम साहब, नन्हें मियाँ को तो पास से हटा लो।

शुबराती—बग़ैर ग़ुस्ल [स्नान] के मरना अच्छा नहीं होता।

झुम्मन—अरी तो मरा कौन है ? अभी तो सिर्फ़ इन्तिज़ार है। दादे मियाँ ने साढ़े चार कहा होगा।

झुम्मन की बीवी—ख़ुदा न करे साढ़े चार कहा हो। तुम्हारा ख्वाब झूठा था, ख़ुदा ने मेरी सुन ली।

झुम्मन—ख्वाब तो ख़ैर झूठा नहीं हो सकता, मुमकिन है यह घड़ी झूठी हो।

झुम्मन की बीवी—नहीं, अब तुम न मरो। उठो बिस्तर से।

ख़ैरातन—बेगम साहब, साढ़े चार भी तो बज चुके हैं।

झुम्मन की बीवी—हाँ हाँ, कह तो रही हूँ इनका ख्वाब झूठा था।

झुम्मन—तो क्या वाक़ई मेरा ख्वाब ऐसा झूठा हो सकता है ? और दादा मियाँ तक झूठ बोल सकते हैं ?

शुबराती—मियाँ वो तो झूठ बोले तो बोले मगर आप तो सचमुच बताइये कि क्या सचमुच ज़िन्दा हैं ?

झुम्मन—बेशक मैं ज़िन्दा हूँ और अब अपने किसी क़र्ज़दार गाहक पर एक पैसा भी न छोड़ूँगा। मगर क्या मेरे अब्बा मियाँ मरहूम झूठ बोलने लगे मरने के बाद ?

शुबराती—मियाँ बड़े हुज़ूर तो हमेशा दिल्लगीबाज़ी किया करते हैं।

झुम्मन—हाँ यह ठीक है। और दादा मियाँ उनकी हाँ में हाँ मिलाया करते थे।

ख़ैरातन—वाह अच्छी रही उनकी दिल्लगीबाज़ी। मियाँ की जान ही ले ली, बेगम साहब रोते-रोते हलकान हो गईं।

झुम्मन की बीवी—वाह री तेरी शान ! तूने इनको फिर से पैदा किया मेरे मौला।

झुम्मन—दो-चार घड़ियों में देखकर बताओ क्या साढ़े चार बज गये ताकि मैं मरने का ख़याल दिल से निकाल दूँ।

[घड़ी टन-टन-टन-टन-टन पाँच बजाती है।]

झुम्मन की बीवी—लो पाँच बज गये। अब उठो बिस्तर से, छोड़ो

चारपाई। तुमने तो सारा मुहल्ला सर पर उठा लिया।

झुम्मन—यह क्या ? मैं सचमुच जिन्दा हूँ अब तक ?

शुबराती—इसका अन्दाज़ा तो इस तरह हो सकता है कि मैं तिजोरी का ताला तोड़ूँ। आप अगर ज़ब्त कर गये तो समझ लीजिए मर गये हैं नहीं तो जिन्दा हैं।

झुम्मन—मैं मर गया हूँ तो और जिन्दा हूँ तो, दोनों हालतों में ताला तोड़ने वाले का सर तोड़ दूँगा। रुपये के मामले में मरना-जीना कैसा ?

खैरातन—अच्छा तो मियाँ, क़र्ज़ का रुपया और चायदानी के दाम माफ़ कर दीजिये।

झुम्मन—यह बात है तो समझले कि मैं मर गया हूँ और बाक़ी सब से कह दे कि मैं जिन्दा हूँ क़र्ज़ का पैसा-पैसा वसूल करूंगा समझी कि नहीं ?

निराला

सुभाषित और सूक्तियां

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार महाकवि निराला ने साहित्य के सभी अंगों को अपनी रचनाओं से विभूषित किया है। उनका अध्ययन बड़ी ही गहन और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही भावपूर्ण हुई है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर बिखरे उनके विचार और सूक्तियों का संकलन इस पुस्तक के रूप में हिन्दी जगत को भेंट है। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि निराला-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक रुचेगी और इसे समुचित आदर प्राप्त होगा।

(आगामी आकर्षण)